ओम् तत्सत् ब्रह्मणे नमः ।

श्री भक्तिरस विन्दुः।

कांधला निवासी श्रीमान् दुर्गाप्रसादात्मज
सीताराम रचित

सम्बत् १९८२ विक्रमी

श्रीमान् भक्त मेदीराम सूरजभान जी झिंझाना निवासी
ने आत्मजिज्ञासु जनों के हितार्थ
छपवाया ।

॥ शुभं भूयात् ॥

गयादत्त प्रेस क्लोथ मारकेट देहली में छपा ।

॥ ॐ तत्सत् ब्रह्मणेनमः ॥

श्री भक्तिरस विन्दुः ।

श्री परापूजा स्तोत्रं ॥ १ ॥

हे प्रभु आप पूर्ण हो, कैसे आपका होवे आवाहन ?
सर्वाधार स्वरूप तुम्हारा, कैसे अर्पण हो आसन ? ॥१॥
स्वच्छ हो आप चरण क्या धोऊं, शुद्ध आचमन फिर कैसा ?
निर्मल को स्नान कहाँ, क्या विश्वोदर को वस्त्र भला ? ॥२
निरालंब को सूत्र कहां है, बिना वासना पुष्प नहीं ।
जो निर्लेप उसे चंदन क्या, शोभनको भूषणभी कहीं ? ॥३॥
नित्य तृप्त को क्या भोजन दूं, विभु को क्या मैं खिलाऊं पान ?
अनंत आपकी प्रदक्षिणा क्या, अद्वय ! क्या प्रणाम सन्मान ? ॥४
वेद वाक्य से वेद्य नहीं हो, कैसे स्तुति गाऊं मैं ?
स्वयं प्रकाशमान को कैसे, दीपक ज्योति दिखाऊं मैं ? ॥५॥
अन्तर्बाह्य पूर्ण हो स्वामी, देव ! कहाँ देवालय हो ?
शिव अखण्ड आत्मा सबके, सबही आप शिवालय हो ॥६॥
सर्व अवस्था में और सर्वदा, येहि तेरी परापूजा ।
सीताराम एक बुद्धि से, यों ही मिटे भाव दूजा ॥ ७ ॥
ब्रह्मवेत्ता ऐसी विधि से, ध्यान समाधी करते हैं ।
ईश्वर सर्वरूप जानकर, दूर उपाधी करते हैं ॥ ८ ॥

श्री "गोविन्द भज" स्तोत्र प्रारम्भः ॥ २॥

टेक—गोविंद भज, गोविंद भज, गोविंद भज रे बावरे ।
मृत्यु शिर पर है, यह डुकरञ् क्या करे सुलझाव रे ॥
है जो वह ईश्वर, तु ऐ मन, गुण उसी का, गावरे ।
सत् गुरू पूरण, निरञ्जन देव में, चित चावरे ॥
तन मिला, हरि का भजन कर, फिर न ऐसा दावरे ।
राम अवसर है, कमाई कर, न फिर, यह भावरे॥गोविंद०॥
है कथन इक बेरि शङ्कर फिरते घर घर मन मगन ।
देखते क्या हैं बिचारा इक ब्राह्मण क्षीण तन ॥
याद करने को लगा है यत्न से डुकरञ् करन ।
दिल में कुछ आई लगे कहने उसे हे मूढ मन ॥ गोविंद०॥
जब तलक बालक रहा नित खेलने में थी लगन ।
जब जवानी आगई तब फंस गया नारी में मन ॥
जब हुआ फिर वृद्ध चिंता में रहा सबकी मगन ।
ब्रह्म में चित ना लगा हा शोक आ पहुंचा मरन॥गोविंद०
फिर के आना और मरना फिर के होना बार बार ।
फिर भी आकर गर्भ में माता के सोना तन पसार ॥
यह बड़ा तरना कठिन है, है जगत सिंधू अपार ।
कीजिये रक्षा दया कर पार झट कीजे मुरार ॥ गोविंद०
होगया सूखा बदन और बाल धौले सब कहीं ।
मुंह में जो कुछ दांत थे, एक एक कर अब हैं नहीं ॥

हा ! बुढ़ापा आगया, अब टेक कर लाठी कहीं ।
चलने लगे पर हाय आशा, अब तलक छूटी नहीं।।गोविंद०
दिन गया और रात आई, प्रात होकर रैन अन्त ।
जब गया जाड़ा तो फिर कर आगई वोही बसंत ॥
खेलता है काल, यह आयुष चली जाती तुरंत ।
तोभी छुटती है नहीं, यह आश की वायुः अनन्त ।।गोविंद०
क्या हुवा भारी जटा की, शिर के मुंडवाये जो बाल ।
गेरवा कपड़े भी धारे, तनके बदले भेष हाल ॥
देख कर भी लोग हैं अन्धे, नहीं सूझे है काल ।
पेट के ही वास्ते धन्धे किये फैला के जाल ॥ गोविंद०
आयु जब जाती रही, फिर काम का कैसा विकार ।
जब कि जल सूखा तो सर में,रह गया फिर क्या है सार ॥
जब कि धन जाता रहा, फिर कौन भाई नातेदार ।
तत्व जब हो ज्ञात फिर यह, क्या है दुनिया कर विचार।।गो०
अग्नि सन्मुख है धरी सूरज तपन है पीठ पर ।
रात को घुटने में ठोड़ी, रख के होती है गुजर ॥
हाथ में ले मांग खाना, सोने को है तरुतर ।
आश तबभी छूटती किञ्चित नहीं यह ध्यान धर।।गोविंद०
मार्ग के लेकर के टुकड़े, जिसने कंथा ली बना ।
पाप पुण्यों से अलग ही, पंथ जिसका है भला ॥
तू नहीं और मैं नहीं, और सब जगत यह है मृषा ।

जान कर यह भेद फिर, कुछ कीजिये फिर शोक क्या?॥ गा०
नारियों की जांघ सुन्दर, अरु स्तन पर के जो हार।
सब यह माया मोह है, मत देख इसको कर न प्यार॥
क्या है यह बस मांस रक्त, अरु अस्थि नाड़ी का विकार।
फंस न उसके जाल में, मन में विचारो बार बार॥ गोविंद०
गान कर गीता प्रभू की, और उसके सहस्र नाम।
ध्यान कीजे लक्ष्मी पति, रूप हरि का आठ याम॥
दीजिये सङ्गत में नेकों की, यह मन ओ सत्य काम।
दीजिये धन निर्धनों को, हों सुखी हों पूर्ण काम॥ गोविंद०
जिसने गीता को प्रभू की, चाव से मन में पढ़ा।
शुद्ध गङ्गाजल की अमृत, रूप बिन्दू को पिया॥
उस हरी का नाम भी कुछ, प्रेम से मन में लिया।
दूत यम के उसकी चर्चा, कर सकें कैसे भला? ॥ गोविंद०
कौन मैं हूं कौन तू है, है कहां से आगमन।
कौन भाई बाप तेरा, हैं ये सब ही स्वप्न जन॥
यूं करे चिन्ता सदा ही, वश में करले जीत मन।
जानले सब जग है मिथ्या, क्यों रहे फिर कुछ जलन॥ गोविं०
कौन तेरी दार है, है कौन तेरा पुत्र नर।
है अधिक आश्चर्यवत्, संसार लख हे मित्रवर॥
कौन तू है और किसका, कौनसा तेरा है घर।
तत्त्व को तू जान अपने, मनके भीतर दृष्टि कर॥ गोविंद०

वास हो गङ्गा के तटपर, वृक्ष नीचे पर्ण डाल ।
भूमि पर शैय्या बने और, पहनने को मृग कि छाल ॥
त्याग रसना त्याग आशा, त्याग कर संसार जाल ।
बढ़ के इस वैराग से फिर, कौन सुख होगा विशाल?॥ गो०
भगवान शङ्कर पूज्य की, रटना है चरपट पञ्जरी ।
सब समझ ले देश भाषा में, है यह मैंने करी ॥
विनय "सीताराम" की, निष्काम तुझ से है हरिः! ।
जो पढे, मन शुद्ध हो, तेरी शरण आवे सही ॥ गोविंद०

अथ श्री मानीषा पञ्चक स्तोत्रं ॥ ३ ॥

गौरी शङ्कर काशी जी में, थे चाण्डाल वेषधारी ।
खड़े मार्ग में, इतने में सह शिष्य वर्ग सत्याचारी ॥
"हटो हटो दो मार्ग हमें तुम" दूर से यह बोले पतिवर ।
यह सुनकर चाण्डाल वेष धर, महादेव बोले हंसकर ॥१॥
हे द्विजवर! यह "हटो हटो तुम" कहने से क्या सिद्ध किया ।
कोश अन्न मय एक दूसरे, से क्या तुमने पृथक् किया ॥
अथवा चिद से चिद को भिन्न, भला तुमने करना समझा ।
भेद समझ में यह नहीं आया, खोल कहो यह बात है क्या?॥२॥
सूर्य की छाया गंगोदक में, वा चाण्डाल कठाली में ।
भेद है क्या आकाश स्वर्ण घट, में हो वा मृद प्याली में ॥३॥

निस्तरंग जो सहजानंद और, ज्ञान समुद्र अन्तर चेतन ।
आत्मवस्तु में विप्र श्वपच, इस भेद भ्रांति का क्या है कथन ? ४ ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के भीतर, जो चैतन्य स्पष्ट लसे ।
जो ब्रह्मा से चींटी तक, प्रविष्ट और जग साक्षि है ॥
सो मैं हूं नहिं दृश्य वस्तु कुछ, ऐसी दृढ़ प्रज्ञा जिसके ।
द्विज वा श्वपच गुरू है सबका, यह निश्चय दृढ़तम है मुझे ॥ ५ ॥
हूं मैं ब्रह्म सहित सब जग के, हूं विस्तारित मैं चिन्मात्र ।
सर्व शेष यह त्रिगुण मयी है, मेरी अविद्या रचना मात्र ॥
इस प्रकार है दृढ़ मति जिसकी, सुखतर नित्य पर निर्मलमें ।
ब्राह्मण वा चाण्डाल गुरू है, यह निश्चय दृढ़तम है मुझे ॥ ६ ॥
सब यह विश्व निरंतर नश्वर, गुरू उपदेश से दृढ माना ।
नित्य निरन्तर ब्रह्म निष्कपट, शांत चित्त से है जाना ॥
भूत भविष्यत कर्म ज्ञानमय, अग्नि मांहि कर डाले भस्म ।
भाग्य समर्पण देह है जिसका, सो गुरु मुझे इष्ट निर्भ्रम ॥ ७ ॥
जिसका तिर्यक नर देवन में, अहं वृत्ति से होवे ज्ञान ।
जिस प्रकाश से हृदय इन्द्रियां, देह मांहि सब होते भान ॥
बादल मध्य सूर्य भानवत् चिदाकार वृत्ति जिसकी ।
ब्रह्मानन्द मग्न मन वाला, इष्ट मुझे सत्गुरु योगी ॥ ८ ॥
जिस सुख सिंधु लेश को, लेकर इन्द्रादिक भी पुलकित हैं ।
जिसे निरन्तर शांत चित्त से, पाकर मुनि आनंदित हैं ॥
नित्यानन्द वारिध जिस चिद में, मग्न न तज्ञ कहो ब्रह्मरूप ।

जो कोई हो सुरेन्द्र पदवंदित, वह गुरु मम निश्चय चिद्‌रूप॥९॥
स्तोत्र मनीषा पञ्चक है यह, समता निष्ठा का भण्डार।
शंकर यति वा किसी शिष्य ने, सुर भाषा में किया प्रचार॥
छूत छात में फँसे हुए, जो चित्त कर्म जड़ रहते हैं।
"सीताराम" देश भाषा में उनके ही हित कहते हैं॥१०॥

अथ श्री जान्हवी स्तोत्रं ॥ ४ ॥

दूर देश ऊंचे पर्वत से, शिवजी का है जहां निवास।
आनन्द पूर्ण शिखरों में होकर, जहां नहीं आहों के श्वास॥
बड़ी भयङ्कर लहरों में हो, बहती है तेरी धारा।
दर्शन तेरा मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा॥१॥
हे माता गंगे!

तोड़ चटानें ढकी हुई जो, शीतल कण से रहती हैं।
आप हिमालय पर्वत की, शिखरों में होकर बहती हैं॥
आन बान से बड़े बड़े, शब्दों से होता झन्कारा।
दृश्य आपका मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा॥२॥
हे माता गंगे!

नामी नामी नदी सैकड़ों, तुझे मार्ग में मिलती हैं।
अपना नाम समर्पण कर वह, शरणागत हो रलती हैं॥
बलिष्ट शासना में मिलकर, तेरी होता है निस्तारा।
दर्शन तेरा मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा॥३॥
हे माता गंगे!

गहरी घाटियों अगम तटों में, भोज पत्र चीड़ अरु बान ।
उनमें बहते हुए जलों का, देखत चलते चलते आन ॥
अद्भुत झलक देखकर मोहित, आकर्षण करने हारा ।
दर्शन तेरा मेरे चित्तको, लगता है अतिशय प्यारा ॥ ४ ॥
हे माता गंगे !

लम्बे लम्बे मैदानों में मंद मंद बहती जल धार ।
बड़े बड़े खेतों को देती, सींच सींच कर अन्न अपार ॥
बङ्ग देश खाड़ी में मिल, अर्पण करती है तन सारा ।
दर्शन तेरा मेरे चित्तको , लगता है अतिशय प्यारा ॥५॥
हे माता गंगे !

शीतल स्पर्श मधुर मधुर जल, प्रिय दृश्य मोहित करते ।
हरे भरे तट देख देख कर, नेत्र नहीं किञ्चित भरते ॥
वही जानता जिसने देखा, आकर्षण करने हारा ॥
दृश्य आपका मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा ॥६॥
हे माता गंगे !

मोहित करने वाली दृष्टि है, सुन्दर अमृत जैसा जल ।
मोहित कर तट पर के पर्वत, सब मन को लेते हैं छल ॥
आप मोहिनी हो अरु मोहन, दृश्य तुम्हारा है सारा ।
दृश्य आपका मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा ॥७॥
हे माता गंगे !

पूज्य किस लिये हो तुम ? अम्बे ! कोटि कोटि जनताकी मात
वह इसलिये किनारे तेरे, सहस्रों हुए मुक्ति को प्राप्त

एकाग्र चित हो तट पर तेरे, हमने दृढ़ आसन मारा ।
दर्शन तेरा मेरे चित्त को लगता है अतिशय प्यारा ॥८॥
हे माता गंगे !

पूर्व समय अज्ञात तभी से, अब तक पूज्य रही तू मात ।
ऋषि मुनियों से मानित होकर, बड़े रहस्य बहु कीन्हे ज्ञात
श्रद्धायुत जिन जनों ने तेरा, धार लिया निर्मल द्वारा ।
दर्शन तेरा मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा ॥९॥
हे माता गंगे !

देवी शक्ति स्वर्ग से आई, अपने भक्ति मद गायन सङ्ग।
भारत भूमी पवित्र करने को, जहां तुम्हारे शुद्ध तरङ्ग ॥
भर्म भूल दूर करने को, कलि में तुमने पग धारा ।
दृश्य आपका मेरे चित को लगता है अतिशय प्यारा॥१०॥
हे माता गंगे !

बहता जल है माता तेरा, पर तू जैसी की तैसी ।
व्यर्थ तृषा है भोग विभव की, यह शिक्षा देती ऐसी ॥
व्यर्थ कामना बड़े नाम की, यह उपदेशत सुख सारा ।
दृश्य आपका मेरे चित्त को, लगताहै अतिशय प्यारा॥११॥
हे माता गंगे !

कितनी बेरि तेरे तट पर मैं, संध्या समय बांध आसन ।
पुण्य तीर्थ हरद्वार में बैठा, ध्यान धारणा युत कर मन ॥
दूर देश से आये हुए जो, उन्हें देखता मतवारा ।

दृश्य आपका मेरे चित्त को, लगता था अतिशय प्यारा॥१२

हे माता गंगे!

कितनी बेरि तेरे तट पर, मैं रात अंधेरी बर्षा में।
इक टक ध्यान लगा कर वाँ पर, देखा करता था लहरें॥
शान्त चित्त से मुग्ध हुवा, देखा करता था जल धारा।
दृश्य आपका मेरे चित्त को लगता था अतिशय प्यारा॥१३

हे माता गंगे!

कितनी बेरि रात को बैठा, घाट सामने पुल ऊपर।
देखा करता था उस जल में, बहते दीपक धारा पर॥
देख आरती पुरोहितों की, पागल सा देखन हारा।
दृश्य आपका मेरे चित्तको लगताथा अतिशय प्यारा॥१४॥

हे माता गंगे!

कितनी बेरि रात को बैठा चन्द्र ज्योति उजियाले में।
सरित पार देखा करता था, बन पर्वत अंधियाले में॥
समझ उसे प्रकृति की महिमा, ठंडी चन्द्र छटा तारा।
दृश्य आपका मेरे चित्त को लगताथा अतिशय प्यारा॥१५

हे माता गंगे!

इक दिन ऐसा भी आवेगा, निर्भय तीर नग्न होकर।
ओम ओम हरि ओम रटेंगे, गाते फिरें मग्न हर हर॥
एक सच्चिदानन्द सनातन, हो पथ दिखलाने वारा।
दर्शन तेरा मेरे चित्त को, लगता है अतिशय प्यारा॥१६

हे माता गंगे!

जान्हवी ! तट पर तेरे जो जन, मतवाले नित फिरते हैं।
सोहम् अन्तर तार जिन्हों का, निरहङ्कार विचरते हैं॥
सीताराम ! ब्रह्म में मिलते, वे तन अपना तज न्यारा।
दृश्य आपका मेरे चित्त को लगता है अतिशय प्यारा॥१७
हे माता गंगे !

अथ चित्तानुशासनम् ॥ ४ ॥

क्यों हे मन ! तू सदा रहा करता है इतना बे परवाह ?
अपनी भूल चूक जानता, फिर भी फँसता रहता आह! ॥१॥
क्या नश्वर सुख यहां जगतके, नीच सुखोंकी अभिलाषा ?
महान जातियां उदय अस्त हों, एक दिवसमें गत आशा॥२।
क्या हुवा मिला तुझे मूर्ख मन, स्वादु सरस अन्न विस्तार ?
क्याहुवाकिसी किसान निर्धनको, जीवनहितकुछकणआहार३
क्या हे मन यदि राजकुंवर वत, पड़ा रहा मृदु गद्दी पर।
क्या यदि दुःख श्वास बिन निर्धन, शुष्क भूमि वा तृणऊपर४
क्या यदि क्रूर शब्द कुछ बोला, तुझको कोई मानव भ्रात।
अच्छा बुरा सभी एक है, जो है सभी ईश हे तात ॥५॥
तेरा नाशमान तन इक दिन, प्रकट हुवा अब होता वृद्ध।
थोड़े काल गए जावेगा, सभी चमक नहि स्वर्ण प्रसिद्ध॥६॥
दीर्घ काल से रावण है नहिं, कंस गया अब नहीं यहां।
व्यास कपिल सब गये जगतसे, तेरीभी अब कुशल कहां?॥७

क्यों निर्लज्ज पिपासा धनकी, बेधत शिशु सम मन निर्दोष
वही समाध पत्थर ईंटों की, वा मृद्दु खनन धरण शव कोष८॥
छोड चाह नाशी द्रव्यों की, मित्र जनों का तजिये मोह ।
कराल मृत्यु दंष्ट्रा में धाते, जिनसे तेरा हित निर्दोह ॥९॥
मित्र नहीं हैं कोइ जगत में, हे मन ! पत्नी कोइ न मात ।
निजहित बांध प्रेम दिखलाते, जीवन में सब तजते तात॥१०
भव के भावों में जो ममता, सो सब बेड़ी कठिन महान ।
दुःख सदा को यह देती हैं, इसे समझ बूझ बलवान॥११
हे पापी मन ! समझ कृत्य को, पापों से तू होजा मुक्त ।
व्यापक ब्रह्मआत्मा लख इक, अन्तर बाहर सबमें युक्त॥१२
अभ्यास दमन से तेरि बासना, सब यह होजावेंगी शांत ।
सर्व शक्तिमत् जान आत्मा, मित्र परम है यह सिद्धांत॥१३
जीवन जन्म दिया है जिसने, शक्तिमान ईश्वर सत एक।
उसी शरण हो,रक्षा अपनी,मरण युद्धसे कर सविवेक॥१४
परम प्रेम का विषय अनाशी, अटल एक का कर दर्शन।
उसे भूल मत क्षणभर, अपना पूर्ण काम जानो हे मन !॥१५
सुखी सुखी तब स्वयं तुष्ठि में,जीवन घटिका होहिं व्यतीत।
श्वास श्वास परमात्म ध्यान में, सिंहासन हो कुशा पुनीत ॥१६
आश्चर्य लीन ब्रह्म में होना, होना है हो भी दुस्तर ।
सीताराम त्रस्त मूढमन, शरण ईश करुणा हितकर ॥१७॥

अथ रामाष्टकं ॥ ६ ॥

दोहा—तजो मित्र सब वासना, खोजो ब्रह्म स्वरूप ।
धर्म युधिष्ठिर से गए, अरु रावण से भूप ॥ १ ॥
मेटो निज संताप सब, खोजो सुख का धाम ।
थोड़ा सा जग जीवना, यहां न कछु विश्राम ॥२॥
नारी यौवन आयु धन, झूठा सकल झमेल ।
दो दिन लीला राम की, दो दिनका सब खेल ३॥
मृग बन में भर्मत फिरे, अपनी भूल सुगन्ध ।
न्यूं सुखमें भूला फिरे, यह जग प्राणी अन्ध॥४॥
अपने अपने धर्म में, हो तत्पर निष्काम ।
माया पति जगदीश हैं, सब के सीताराम ॥ ५ ॥
धन्य जन्म तिनको सफल, रत स्वधर्म जे वीर ।
सत्य पथ्य नहिं टल सके, जाय तो जाय शरीर॥६॥
यह नर तन यूंही गयो, जो नहिं खोजा सार ।
जग बैरी पैदा भये अरु पृथवी पर भार ॥ ७ ॥
धर्म हेतु हरि ने रची, यह मानुष की देह ।
बिना धर्म निश्चय लखो, केवल विष्टा खेह ॥८॥
जो यह अष्टक राम को, पढ़त प्रेम चित लाय ।
राम खोज लख राम को, राम रूप हो जाय ॥ ६॥

अथ भव असारता निरूपणं ॥ ७ ॥

जिसने यह भव स्वप्न असत्य, भयानक भ्रमतम लखा विनास
उसने तोड़ बंध जीवन के, मायिक पथ सब किया प्रकास ॥ १
मिथ्या यह रचना सब चल है, कैसे इसे जानते सत्य ।
दीर्घ काल के मनोराज्य से, इतर नहीं जाग्रत तथ्य ॥ २ ॥
मरु देशों के तप्त रेत में, मृषा झलकता कैसे जल ?
अधिक तृषा वश गया आह ! तब दिया हताशा उलटा चल ॥ ३
आशा सिन्धु तरना है तुझको, भले बुरे दो जिसके तट ।
व्यर्थ वासना वेग भंवरयुत, धारा बहती रह, हट हट ॥ ४ ॥
शील तुम्हारा सुगम मार्ग हो, भय मत दुर्पथ से खाना ।
धर्म तुम्हारी नौका होगी, चढ़ कर अगम पार जाना ॥ ५ ॥
जीवन क्या है? जीव पथिकके क्षण भर का है यह विश्राम ।
थोड़ा ठहर अन्नजल खा पी, अन्य जगह फिर कर आराम ॥ ६
कर्म बीज जो तुमने बोए, उनका वैसा काटो फल ।
धर्म बीज बोते सुख मिलता, रोते कहो भाग्य निर्बल ॥ ७ ॥
स्वयं आपने भाग्य रचा है, स्वयं कर्म अपने करते ।
किसी इतर ईश्वर करता पर, भार कृत्य का क्यों धरते ॥ ८ ॥
जो तेरा सो सब अर्पण कर, जग तज निज स्वरूप भज राम ।
सर्व भला निज भला तुम्हारा, सतपथ से पहुंचा सुख धाम ॥ ९
हे सर्वात्म पिता निजात्मा, हे ईश्वर विभु सीताराम !
एक सत्यचित् सुख तुझको हम, बारबार करते हैं प्रणाम ॥ १०

मेरे सद्गुरु ॥ ८ ॥

गङ्गा तट पर दयावान, इक परमहंस यति प्यारे हैं।
वर्जित चिन्ता रहित बासना, जग कश्मल ते न्यारे हैं॥१॥
शान्त करुण है दृष्टि उन्हों की, प्रेम पूर्ण उनका मुख है।
सदा ब्रह्मविद्या में रति है, उसमें यतिवर का सुख है ॥२॥
सर्व समान धनी निर्धन में, आदर उनका रहता है।
सत् की उज्वल प्रतिमा हैं, यह दर्शन उनका कहता है॥३॥
संतोष पिता माता है शम, अरु भगनी प्रज्ञा है उनकी।
प्रिय पत्नी है क्षमा सहन, यह दशा पवित्र शुभजीवनकी॥४
यद्यपि बुद्धिमान अरु पण्डित, ज्ञान धर्म की शिक्षा में।
तद्यपि जीवन सहज उन्हों का, द्वार द्वार रति भिक्षा में॥५॥
धन की तृषा विहीन वह स्वामी, दूर नाम की प्यासा से।
रोग हीन अरु सुखी देह है, दुखी नहीं यश आशा से॥६॥
बड़े बड़े सम्राट् शासना, भीति युक्त जन मन करते।
वह प्रिय शब्द निष्कपट कहकर, दर्शकका तन मन हरते॥७
सर्व मनुज उनके बालक हैं, सारा जग उनही का है।
अहङ्कार अरु इच्छाओं से रहित राज्य उनही का है ॥ ८॥
दिव्य दृष्टि से पूर्ण उन्हें, निज स्वरूप आत्मा है साक्षात्।
जीवन क्षण सुख युक्त बिताते, निज महिमा लीलामें तात॥९

शांति देश के स्वामी सतुगुरु, बुद्धि गुहा में उनका बास ।
जग अवतरे शान्ति रस देने, देव निरंजन पूर्ण प्रकास।१०।
सहस्र बार मैं चूम चूम लूं, चरण कमल निज सतुगुरु के ।
सीताराम धर्म मत भूलो, तोड़ बंध जीवन भरके ॥११॥

ममता निरूपणं ॥ ६ ॥

दीर्घ काल से विविध योनि में, जन्म बहुत हमने भोगे ।
भस्म हुए बहु शमसानों में, प्रभु ! हम कब विमुक्त होंगे?१॥
जब शिशु थे हम मात पिता की, रक्षा में थे अति प्यारे ।
थे स्वतन्त्र भोले भाले थे, हंसते रोते मतवारे ॥ २ ॥
बालक थे भय युक्त समय तब, बीता सहते गुरु के दण्ड ।
हुए युवा तब फंसे काममें, पाश बद्ध वश नारि प्रचण्ड॥३॥
चिन्ता ग्रस्त व्याप्त शोक से, क्या आरम्भ हुवा जीवन !
मिथ्या कुल के विकल्प कोट में, बद्ध दासता युत था मन॥४
वित्त ईषणा यश प्रतीक्षा, से हरदम था चित्त मलीन ।
परदेशों में लज्जायुत हो, द्वार द्वार होता था दीन ॥५॥
मूर्ख धनी अभिमानी लोगों, के प्रसन्न करने को हम ।
उद्यत रह धिक् खर सम सहते,झुक करते प्रणाम हरदम॥६॥
दयाहीन वे हृदय जब उनके, वश हम कार्य गये कुछ भूल ।
त्रस्त नेत्र कंपित आंखों से, पुच्छ हिलाते चाटत धूल ॥७॥
जकड़े मिथ्या नेह पाश में, कसे हुए दृढ़ सङ्कुल में ।
मूढ़ चित्त की वृथा आश में, बीती यह अमूल्य घड़ियें ॥८॥

जीवन रत्न मूल्यवान बहु, बेचा बदले टुकड़े कांच ।
अहो! शरण ईश्वर की गहता, खोया समय सही जग आंच॥६

मेरे ईश्वर! शुद्ध हृदय से, तुझ से आशा है मेरी ।
तुझ से भिन्न न कुछ मैं देखूं, यह करुणा होवे तेरी ॥१०॥

व्यष्टि समष्टि सकल तूही है, मुझको याद रहे यह मंत्र ।
एक अखण्ड पूर्ण ब्रह्म सब, लख यों सीताराम स्वतन्त्र॥११॥

अथ सर्वत्याग निरूपणं ॥१०॥

भव के विषय भोग जीव को, अंतकाल देते पीड़ा ।
सुख सङ्कल्प तुझे दृढ़ बंधन, इन से बच मन तज क्रीड़ा॥१

आकर्षक सुख पृथ्वी के हैं, मनुष्य मात्र को करते दीन ।
बाल खिलौनों के सम सुख भद, बच मन हरि में होजा लीन॥२

मिथ्या मात्र पदार्थ जगत के, चञ्चल हैं ज्यों सिन्धु तरङ्ग ।
काल बताता घड़ी बजाकर, सदा संभल मन त्याग उमङ्ग॥३

मैं वह तू तेरी मेरी है, रोगी मस्तक की बकवास ।
देख देख तेरा नहिं कुछ भी, इनसे मन तुम रहो उदास॥४

नहीं कभी अन्त इच्छा का, इससे है सब व्यर्थ प्रयत्न ।
अविनाशी हरि खोज मूढ़ मन, चिन्ता सोच त्याग कर यत्न॥५

रम्यमाण इस भव बज़ार में, सुख के बदले दुख की आश ।
भाव ताव सब छोड़ मूढ मन, चिन्ता त्याग मोह की पाश॥६

फिरफिर जन्म निराशा मरना, बड़े शोक की है यह बात ।

इससे बने उपाय तो करलो, व्यर्थ जन्म मत खोना तात॥७॥
ऊपर अब बादल है नभ में, सूर्य चमक वर्षा पानी।
चंचलता की गर्ज चार दिश, सावधान मन अभिमानी॥८
इन्द्रिय गण सुख भोग चाह में, रोग पीड़ का डर रहता।
मानस चिन्ता महान कष्ट है, इनको तज कर सुख गहता॥६
धन हो विपुल व्यर्थ नाशभय, राज कर्म दण्ड समराट्।
सुखी देह में मरण भीति है, काल खोल मुख तकता बाट॥१०
हंसी विलास में वीर विजय की, शत्रु का निस दिन है भय।
उच्च घरों में बुरी नारि का, दुराचार से है नितक्षय॥११॥
विषय भोग की चाह निरर्थक, भरी शोक आशा दुख से।
ऋषियों की यह अचल धारणा, मन निश्चिन्त रहो सुखसे॥१२
पूर्ण जगत मग कुटिल कण्टकों से, अरु सुख का लेश नहीं।
बड़ी बड़ी घटना कष्टों का, त्याग ब्रह्म उद्देश वहीं॥१३॥
बिस्तर राज्य बड़े वैभव से, मरण भला उद्दश्य अज्ञात।
कोई जगत की पीड न व्यापे, मन हो ध्यान लीन जो तात॥१४
सर्व शक्ति सर्वात्म शरण हो, केवल तन का हो निर्वाह।
सीताराम सुखी दिन बीतें, ब्रह्म मांहि तज मन की चाह॥१५

सर्व व्यर्थता निरूपणं॥११॥

व्यर्थ हर्ष इस लघु पञ्जर के, व्यर्थ नाम की तृष्णा चाह।
व्यर्थ आश धनमान यशों की, व्यर्थ हर्ष पीछै दुख दाह।

कैसा फिर हंसना गाना है, नाच कूद है यह किस अर्थ ।
हाय सभी हैं पूर्ण दुखों से, सभी नाशमान है व्यर्थ ॥१॥
व्यर्थ मोह पितृगण का है, व्यर्थ नारि से तेरा नेह ।
व्यर्थ प्यार तेरा बच्चों से, व्यर्थ हाय, कल कल है खेह ।
व्यर्थ जतन संशय युत जीवन, यम का तीखा है आरा ।
व्यर्थ हर्ष का बाजा बजता, सभी अन्त होने हारा ॥२॥
अहङ्कार है वृथा मूढ़ मन, और वृथा है तेरा यत्न ।
वृथा सदा की तेरी चिंता, व्यर्थ आश क्या सब नहिं स्वप्न ?
व्यर्थ तुम्हारा नभ में उड़ना, जब जानत इकदिन शिर काल
हाय ! व्यर्थ आकर्षक तृष्णा, माया मोह व्यर्थ जंजाल॥३॥
व्यर्थ राज्य पृथ्वी सागर के, व्यर्थ प्रेमियों के उपहास ।
व्यर्थ गल्प मित्र पङ्गत में, व्यर्थ खान पान मृदु हास ।
सभी समय वश न्यारे होंगे, मेल जोल को है धिक्कार ।
हाय! सभी आशा निराश है, व्यर्थ तुम्हारा सुख अरु प्यार॥४
जीवन व्यर्थ व्यर्थ व्याकुलता, लगी प्यास, क्षुत भोजनकी ।
व्यर्थ स्वप्न के सुखकी आशा, फले चाह जग बंधन की ।
व्यर्थ तृषा क्यों बहु श्रम कीजे, जब जाना इक सत सुखसार ।
हाय! ठगी, सब रम्य भास्ता, व्यर्थ चमक झूठा व्यवहार॥५
व्यर्थ चित्त! स्वार्थ परता है, रति सुख में कैसा विश्वास ?
चन्द्रमुखी की विरह वेदना, व्यर्थ भयङ्कर दुख की आस ।
व्यर्थ लालसा ऋद्धि सिद्धि की, व्यर्थ गले की यह पाशा ।

अहो! दूर इनसे तुम रहना, व्यर्थ लखो इनकी आशा ॥६
व्यर्थ रंज! कुछ खोया तूने? व्यर्थ तुम्हारा सकल विषाद।
व्यर्थ भविष्यत् की सब चिन्ता, कारण ज्ञात नहीं कुछ याद।
व्यर्थ यत्न है योग क्षेम हित, तू द्रष्टा है शुद्ध स्वतन्त्र।
शेष सभी चल, मृत्यु ग्रस्त है, नाम रूप व्यर्थ परतन्त्र ॥७
व्यर्थ चित्त अभिमान तुम्हारा, हाथ क्रिया जब करते हैं।
व्यर्थ चित्त अभिमान तुम्हारा, पाद मार्ग में चलते हैं।
वृथा अहङ्कार तेरा है, क्रिया करत आंख अरु कान।
इन सबकी निजर गोलक में, अद्भुतक्रिया व्यर्थ अभिमान॥८
व्यर्थ चित्त अभिमान तुम्हारा, यदि मन हो पवित्र निर्दोष।
आह! व्यर्थ रसना के सुखका, है अभिमान दुःख अरु दोष।
हर्ष व्यर्थ कोमल सेजों का, शोक व्यर्थ जो गये करण।
सर्व व्यर्थ है शान्त आत्मा, मन में धारो ईश चरण ॥९॥
सत्य एक है वही पथ्य है, सर्व शक्ति चिद एक वही।
वही एक आनन्द निरन्तर, प्रेम प्रवाहित एक वही।
परम प्रेम का विषय निरन्तर, तेरा मेरा सबका आप।
संस्कार सब शेष वृथा हैं, सीताराम मेट संताप ॥ १० ॥

आरती।

टेक—जय जय शङ्कर स्वामी प्रभू जय शंकर स्वामी, देव निरंजन ब्रह्मसनातनशिव अन्तर्यामी, ओम्ओम् हरिओम्॥१॥

मनबुद्धि ते परे विलक्षण, शुभमति परकाशे, प्रभु शुभमति प्रकाशे
जिज्ञासू जन ताप हरे सब भ्रमसंशय नाशे, ॐ ॐ हरि ओम्॥२
सुने श्रोत्र नहिं, सुने जाहि ते, सतचित आनंदे प्रभु सतचितआनंदे
देव देव महादेव स्वयंभू रामानित वन्दे, ओम्ओम् हरिओम्॥३
शब्द जाहि नहिं कथन कर सके, ॐ लक्षज्ञानं प्रभु ॐ लक्षज्ञानं
सर्वनाम विन लक्ष ब्रह्मचिद्द सत्ता निजभानं॥ओम्ओम्हरिॐ४
चक्षु जाहिनहिं देखसकत जो सूरजउजियारे प्रभुजोसूरजउजियारे
एकरूप बहुरूप पसारे, निज माया धारे॥ ॐ ॐ हरि ओम्॥५॥
प्राण जाहि बिन चलत न वायु, द्रवता जलमाहीं, प्रभुद्रवताजलमाहीं
अनुभव रूप स्वयं प्रकाशक, सन्तन हरषाहीं॥ॐ ॐ हरिॐ॥६॥
शङ्कर रूप धरे गुरु देवा सनकादिक तारे, प्रभु सनकादिक तारे
कृष्णरूप अवतरे निरंजन रामा हितकारे॥ ॐ ॐ हरिॐ॥७॥
निज मायासे भक्तन हितु अव्यक्त व्यक्तिधारी, प्रभु अव्यक्त व्यक्ति-
धारी, काशायम्बर यतीरूपसे शङ्कर त्रिपुरारी॥ॐॐहरिॐ॥८॥
शुद्धहृदयका थाल सजरूं ज्ञानदीप ज्योती, प्रभु ज्ञानदीप ज्योती
भाव भक्ति की माला डारूं, गिरा प्रेम मोती॥ॐॐ हरिॐ॥९॥
ॐ ॐकी ध्वनि लगाऊं सोहं सो ध्याऊं, प्रभु सोहम् सो ध्याऊं।
आपा करूं भेंट ईश्वरकी लक्ष समजाऊं॥ ॐ ॐ हरि ॐ॥१०॥
अनन्यभावसे पढ़े आरती चिदसाक्षी ध्यानं, प्रभुचिदसाक्षीध्यानं
भेद भर्म सब मिटे निरन्तर अनुभव रामानं।ॐॐहरिॐ॥११॥

अथ अभेद भक्तिः ।

मिले जो हैं आंखों के इशारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ।
सदा स्वरूप एक ही हैं प्यारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो राम तुमहो मैं जानकी हूं, तु देख मुझको मैं तुझको देखूं
हैं आत्मा एक ही न न्यारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
मैं राधिका हूं तो आप मोहन, जो प्राण हूं मैं तो तुम मेरे मन
न रह सकें ये बिना सहारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो तुमहो सरिता तो मैंभी जलहूं, जुदा न मैं तुमसे एकपल हूं
जुदा जुदा क्या हुए किनारे, इधर हमारे उधर हमारे ॥
जो तुमहो सोना तो मैं हूं गहना, न खोटका मुझको दो उलहना
मिलें हैं अन्तर नहीं जुदा रे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो तुम प्रियतम तो प्रिय हूं मैं, जो तुमहो वाणी तो उसकी धुनमैं
ये गायेंगे गीत लोग सारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो सूत हो तुम तो मैं हूं बस्तर, जो तुम हो धातु तो मैं हूं शस्तर
हैं व्यर्थ यह नाम रूप सारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो तुमहो दीपक तो मैं उजाला, जो तुम हुताशन तो मैं हुं ज्वाला
किसी ने कुछ नाम कह पुकारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
जो सच्चिदानन्द तुम हो पूरण, तो मैं हूं कूटस्थ साक्षि चेतन
हैं पट जो मायिक खुले हैं सारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥
है वास्तव भेदका मुंह काला, तुम्हीं हो मणिका तुम्हीं हो माला
हैं एक चिदघन के सब पसारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥

तुही है ईश्वर तुही है सृष्टि, तुही है द्रष्टा तुही है दृष्टी।
हैं स्वप्नवत् ही यह भेद सारे, इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥

अथ प्रेमानुरक्तिः ।

हुए दर्शन रामके जबसे सखी सब अपना बेगाना छोड़ दिया।
हरि ध्यानकी धुनमें समाय रही रसबात बनाना छोड़दिया॥टेक
सर्वात्म ब्रह्म ही साजत है, इक तार निरन्तर बाजत है।
मन मंदिर मांह बिराजत है, हरिमंदिर जाना छोड़ दिया॥१
सब ओर उसी की हस्ती है, हरि प्रेम की दारू सस्ती है।
अब दृष्टी में निज मस्ती है, दृष्टी का जमाना छोड़दिया ॥२
आनंद सरोवर बहता है, लहरों से बुलबुला कहता है।
हम तुममें भेद नहीं रहता है, लो सारा बहाना छोड़दिया॥३
ये हिन्दु यवण अरु ईसाई, अरु बुद्ध यहूद कलीसाई।
इक मालिकके हैं शरणाई, जब जीका दुखाना छोड़ दिया॥४
बाजों पे स्वर से गाते हैं कोई गाकर शब्द सुनाते हैं।
उसे अपनेमें आप वो पाते हैं जब शब्द सुनाना छोड़दिया ॥५
जहां देखता हूं चिन्मात्र वही, सब ओर प्रकाशक मात्र वही
बस एकहि पात्र अपात्र वही, धुन नाद बजाना छोड़ दिया॥६
वह अन्तर ज्ञाता ज्ञापक है, सब रूप से आप वो व्यापक है
सब रचनाका वह थापक है, जगजाल बिछाना छोड़ दिया॥७
नहिं कोई सन्यासी वेष लिया, नहिं किसी पंथका लेख लिय।

गुरुज्ञान से सोचके देखलिया, मनको भटकाना छोड़दिया॥८
ज्ञानकी अग्नि सिलगती है, सब ओर से ज्योति झलकती है
रसप्रेम की बूंद छलकती है, कोई लक्ष्य बनाना छोड़ दिया॥६
हुवा रामके साथ विलास सखी, हुए रामजी आप निहाल सखी
गई अपनी सुरतकी संभाल सखी, कहीं आना जाना छोड़दिया

अथानन्य भक्तिः ।

श्री रामचंद्र मुकुंद माधव गोपी श्याम तुही तो है ।
वह गणेश विष्णु, महेश ईश्वर सर्व काम तुही तो है ॥१॥
जिसे लोग कहते हैं जगपिता, उसे आपा जानिये सर्व का।
वही आत्म है परमात्मा अरु सर्वनाम तुही तो है ॥२॥
बहु काल ढून्ढते होगया, न मिला कहीं भी तेरा पता ।
पर भेद अन्तको खुलगया कि वह सर्वधाम तुही तो है ॥३॥
तुही सच्चिदानंद रूप है, तुही आप सर्व स्वरूप है ।
तुही जैसे सूरज धूप है, रमा सर्व ठाम तुही तो है ॥४॥
जहां कहना सुनना नहीं रहा, अरु सोचना न कहीं रहा ।
जहां नाम रूप नहीं रहा, वही ब्रह्मधाम तुही तो है ॥५॥
कोई कह पुकारो कि हे हरिः व रहीम नामसे भी सही ।
सोई बुद्ध नाम से बुद्ध भी अरु राम राम तुही तो है॥६॥
हुई जैसे पानी से भाप थी, इक आदि सत्ता हि आप थी ।
कहिं ईश सृष्टि की छाप थी, सब सीताराम तुही तो है॥७

अथ श्री बाँसुरी लीला ।

रूपक इसका इस प्रकार है :—

श्रीकृष्ण आत्मा है, राधा माया कृष्ण की श्री है, मुरली बजाना ब्रह्माकार वृत्ति रूप ज्ञान है ।

गोप तथा गोपियां, नाना इच्छा वासना से रहित, केवल प्रेम रस युक्त भक्त हैं ।

गाय चराना, रास रचाना इत्यादि नाना व्यवहार विलास है, रूठना मनाना मिथ्या अहङ्कार का विलास है माया का ज्ञान से विरोध है, इसलिये राधा बाँसुरी छिपा देती है, माया से कोमल ज्ञान तिरोहित होजाता है ।

श्री कृष्ण समता सान्तवनसे माया के अनुकूल वर्तते हुए पुनः ब्रह्माकार रूप ज्ञान सम्पादन करते हैं । माया रूप राधा कृष्ण को उपालंभ देती है कि तेरे शरणागतों को तेरेलिये लोकलज्जा त्यागादि कठोर दुःख सहने पड़ते हैं । सब ज्ञाततः वा अज्ञाततः आत्म सन्मुख हैं यानी ब्रह्म आकार वृत्ति को धारण किये हैं क्योंकि कृष्ण से इतर कुछ है ही नहीं । 'सदसच्चाहमर्जुनः' यह गीता में भगवान ने स्वयं कहा है । बिना बन्सी के स्वर सुने यानी आत्मज्ञान बिना समाधी नहीं होती, सुनकर कृष्ण आत्म साक्षात्कार होता है माया विघ्न नहीं करती किन्तु सब

कृष्ण से एकीभूत होकर उन्मत्त रहते हैं। अज्ञान पट दूर हुए पीछे झांकी ही है।

श्रीकृष्ण उवाच :—

वह बांसुरी हमारी राधा कहां छिपाई।
जब से उसे गुमाई पल भर न नींद आई ॥
बिन उसके गाय सारी फिरती हैं मारी मारी।
रहती सदा दुखारी यह जी में क्या समाई ॥
छोटा सा नंदलाला मैया ने दुख से पाला।
गैया कहा चराला मुरली मुझे सिखाई ॥
तब से फिरूं मैं बनमें वा खेलुं गोपियन में।
अथवा फिरूं गलिन में यह बांसुरी सहाई ॥
जब बालकन में जाऊं खेलूं कि लड़के आऊं।
छिन मन का दुख मिटाऊं तब बांसुरी बजाई ॥
बाबा ने दीन्ही गारी मां ने लकुटिया मारी।
भागूं बजाके तारी स्वर से उसी पे गाई ॥
यह बंसिया दुलारी मैं उसपे जान वारी।
जाकरके लादो प्यारी बस इसमें है भलाई ॥
दो बांस की हैं पोरी मांगूं हूं हाथ जोरी।
बिनती करूं चिरोरी लादो जहां छिपाई ॥
जो बांसुरी न दोगी दुख भी बड़े सहोगी।
श्रीकृष्ण हम हैं योगी तुम से सहा न जाई ॥

तुमने कहा न माना सब गोपियों ने जाना ।
मुरली का मैं दिवाना हो जायगी लड़ाई ॥
हमको ये दान दीजे ऐसा न आप कीजे ।
तुम्हारा न मान छीजे हम से न हो बुराई ॥
सीता का जो सहारा श्री कृष्ण ही है प्यारा ।
राधा से कर किनारा कान्हा ने भौं चढ़ाई ॥

श्री राधिका उवाच :—

मुरली अधर पे रखके क्यों जी जलाया तू ने ।
मेरी जगह पे उसको राधा बनाया तूने ॥
जादू से कोई नारी मुरली बनाके धारी
कैसा जती मुरारी बाना बनाया तूने ॥
मुरली जो धुन सुनाती दिलको मेरे न भाती
मैं उसको क्यों छिपाती मुझसे छिपाया तूने ॥
कर करके जोरा जोरी बैयां कभी मरोरी
योंही सदा मुरारी हमको सताया तूने ॥
बस्ती में और बन में मंदिर गली में जन में ।
मेलों में अरु चमन में, घर घर फिराया तूने ॥
नहीं भंग नहीं सुरा है कैसा चढ़ा नशा है ।
नस नस में जा बसा है बेसुध बनाया तूने ॥
अपने सखा बुलाये हमको उन्हें दिखाये ।
उनसे हंसे हंसाये वेश्या बनाया तू ने ॥

माखन चुरा चुरा कर बछड़ों के मुंह लगाकर ।
उनको पिटा पिटा कर दिलको चुराया तूने ॥
चूल्हे जलाऊं बन्सी तुझको दिखाऊं बन्सी
आजा बताऊं बन्सी हमको जलाया तूने ॥
यह राम जोग माया श्रीकृष्ण जी की छाया
मोहन को भय दिखाया अच्छा दिखाया तूने ॥
माया की प्रभुताई देखी तो हंसी आई
नैनों से यह लखाई हमको लुभाया तूने ॥

श्रीकृष्ण उवाच :—

थी बुद्धिमान ज्ञानी तुम तो बड़ी सयानी
क्या होगई दिवानी ओ मेरी राधा रानी ॥
यह मुरलिया जलादो तुम भस्म ही बनादो
वायु में फिर उड़ादो पहुंचेगी कुछ न हानी ॥
बांसों में हम रमेंगे मुरली की धुन बनेंगे
स्वर आप हो बजेंगे तुम घर भरोगी पानी ॥
इतना सिखाया हमने इतना सुनाया हमने
इतना मनाया हमने पर एक भी न मानी ॥
मुरली हमारी लादो हमसे कहो सुनादो
श्री राम कृष्ण गादो मोहन रसीली बानी ॥

ॐ

मोहन ने जो सुनाई राधा के मन को भाई

दौड़ी कहीं पे जाई झट बांसुरी वो लाई ॥
गल बांह डाल कर फिर देखा उन्हें नज़र भर
हाथों में बांसुरी धर बोली ये लो कन्हाई ॥
मैं तुझ कने रहूंगी जोगन तेरी बनूंगी
सब दुःख भी सहूंगी लज्जा सकल गंवाई ॥
गाती फिरूंगी बनमें सखियों में साधु जन में
वैराग होगा मन में तुझ कृष्ण की दुहाई ॥
दृष्टी जहां पड़ेगी तुझसे नजर लड़ेगी
राधा न वां अड़ेगी तुझमें रहे समाई ॥
लो मुरलिया बजादो कुछ दर्द भरके गादो
कुछ प्रेम से सुनादो मतभेद सब भुलाई ॥
स्वर वह सुनादो भरके घरके रहें न दरके
हों आपके न परके मस्ती रहे वो छाई ॥
सच्ची वो धुन सुनानी सुन मन रहे न बानी
मैं ज्ञान की दिवानी तेरी शरण में आई ॥
मैं राधिका रहूं ना बन्सी की धुन सुनूं ना
मोहन अलख लखूं ना निज रूप में समाई ॥
जो तेरी ये अदा है वोही तो राधिका है
अब तेरि बन्सिया है लीला तेरी कन्हाई ॥
मोहन ने दिल लगाके मुरली अधर पे लाके
राधा से मन मिलाके यह रागनी बनाई ॥

भारत का युध रचेंगे अर्जुन से जो कहेंगे
सब शोक मन हरेंगे वह ज्ञान धुन सुनाई ॥

पहिली तान—

सतचित अरु सुख रूप सनातन विश्वरचैया मैंही तो हूं
मायापति जगदीश पुरातन राम रमैया मैं ही तो हूं ॥टेक॥
पुरुषोत्तम हूं नित्य निरंजन, पुरुष कहैया मैं ही तो हूं
निर्विकार निर्गुण परमात्मन् वेद कथैया मैं ही तो हूं
निज माया कर विविध रूप से विश्व भरैया मैं ही तो हूं
वामन रूप धार पृथ्वी पे बलिराज छलैया मैं ही तो हूं
सत चित अरु०००॥१॥
परशुराम हो क्षत्री विनाशे नाश करैया मैं ही तो हूं
श्रीरामचन्द्र है रावण मारयो दुष्ट दलैया मैं ही तो हूं
श्री कृष्णचन्द्र आनंद कंद बन्सी को बजैया मैं ही तो हूं
धर्म कर्म वेदन संतन मर्जाद रखैया मैं ही तो हूं
सत चित अरु सुख रूप सनातन०००॥२॥
रावण के घर जनक सुता की पीर हरैया मैं ही तो हूं
भरी सभा में द्रुपदसुता की लाज रखैया मैं ही तो हूं
गौतम नार पगन से छूकर मुक्त करैया मैं ही तो हूं
लोक लाज से गोप सुतन की लाज हरैया मैं ही तो हूं
सत चित अरु सुख रूप सनातन०००॥३॥
विप्र सुदामा अरु उद्धव की साख दिवैया मैं ही तो हूं

खंभ फार प्रह्लाद भक्त के, प्राण बचैया मैं ही तो हूं
ध्रुव बालक की सीस जटा पे, हाथ धरैया मैं ही तो हूं
पकर बांह बीर अर्जुन, उद्धार करैया मैं ही तो हूं
वासुदेव मनमोहन हरि, चित चोर कन्हैया मैं ही तो हूं
जुग जुग में अवतार धार, भव भार हरैया मैं ही तो हूं
सतचित अरु सुखरूप सनातन००० ॥४॥

पीताम्बर शिर मोर मुकट धर, रास रचैया मैं ही तो हूं ।
भद्रा मुद्रा धार ज्ञान, उपदेश करैया मैं ही तो हूं ॥
काशायांबर हस्त कमण्डल, अलख जगैया मैं ही तो हूं ।
बुद्धदेव शङ्कर दत्तात्रय, नग्न रहैया मैं ही तो हूं ॥
सन्त रूप नारायण रामा, भक्त तरैया मैं ही तो हूं ।
सत चित अरु सुख रूप सनातन, विश्वरचैया मैं ही तो हूं ॥
माया पति००० ॥ ५ ॥

भारत नैया बही जात है, पार करैया मैं ही तो हूं ।
भवसागर मंजधार है बेड़ा, नाव खिवैया मैं ही तो हूं ॥
पृथवी पर जब दुष्ट बढ़े, परिहार करैया मैं ही तो हूं ।
दुःखारत की सुनी टेर, उद्धार करैया मैं ही तो हूं ॥
जग उत्पत्ती पालन और संहार करैया मैं ही तो हूं ।
सत चित अरु सुख रूप सनातन, विश्व रचैया मैं ही तो हूं ॥
माया पति जगदीश पुरातन, राम रमैया मैं ही तो हूं ॥ ६ ॥

दूसरी तान—

ज्ञान तुम्हें विज्ञान सहित अब, अशेष कृष्ण यह कहता है।
जिसे जानकर यहां अन्य, ज्ञातव्य शेष नहिं रहता है ॥१॥
सहस्रों में कोइ इक मनुष्य, सिद्धि अर्थ करता है यत्न।
यत्नशील चितशुद्धों में, कोइ मुजको जाने क्या मैं कृष्ण॥२
भूमि जल अग्नि अरु वायू, नभ मन बुद्धी अरु हंकार।
आठों जड़ अपरा प्रकृति, कारण शक्तिः मेरी विचार ॥३॥
इन आठों से न्यारी परा, प्रकृति लो तुम मेरी जान।
जीव रूप चैतन्य शक्ति यह, जिसने धारा विश्व महान ॥४॥
जड़ चेतन सब भूतों की ही, कारण यह दो हैं जानो।
मैं सब जग की उत्पत्ती अरु, प्रलय हूं यह पहिचानो ॥५॥
मुज से अलग श्रेष्ठ अरु सूक्ष्म, जुदा नहीं स्थित कोई।
मुझ में सब यह यूं पोया, ज्यूं सूत में सूत मणी पोई॥६॥
जलों में रस हूं सर्य चंद्र में, तेज प्रणव हूं वेदों में।
नभमें शब्द अरु नरों में पौरुष, व्यापक यों सब भेदों में॥७॥
शुद्ध गंध पृथवी में मैं हूं, और अग्नि में तेजस्वरूप।
सब जीवों में जीवन हूं मैं, तापस जन में हूं तप रूप॥८॥
सब भूतों का बीज सनातन, कारण रूप तुम लखो हमें ॥
बुद्धिमान जनता में बुद्धि हूं, तेजवान में तेज हूं मैं ॥९॥
बलवानों में बल भी मैं हूं, कामराग से रहित जो हो।
जीवों में वह काम भी मैं हूं, धर्म विरुद्ध होवे ना जो ॥१०

जो कुछ भाव सात्विक राजस तामस, उनको मुझसे जान
वे मुज में कल्पित हैं सारे, मैं तो उनमें नहीं सुजान ॥११
तीनों गुण वाले भावों से, इन से मोहित सब जग ये।
इन से परे श्रेष्ठ सूक्ष्म रु, अविनाशी नहिं लखे मुझे ॥१२
मुझ ईश्वर की है दुस्तर, यह माया तीन गुणों वाली।
मुझकोही तज अन्य लखें जो, माया तरें भाग्यशाली॥१३
मैं हूं होम अरु यज्ञ सुधा में, औषध भी मैं ही तो हूं।
मन्त्र हूं मैं अरु हविश अग्निहूं, घृतस्वरूप मैंही तो हूं।१४
पिता हूं मैं जग की माता हूं, धाता और हूं पिता महान।
ज्ञेयरूप हूं पवित्र ओम्, ऋकसामयजू तू मुझसे जान॥१५
सब की गति साक्षि भरता हूं, निवास शरण परउपकारी।
उत्पत्ति प्रलय स्थान खानि हूं, बीज अनाशी हूं प्यारी॥१६
मैं तपता हूं वर्षा निग्रह, करता रूप भी मैं ही हूं।
अमृत हूं अरु मृत्यूभी हूं, सत् रु असत् सब मैंही हूं॥१७
सत्ता मेरी भान है मेरा नाम, रूप सब मेरा है।
मैं हूं तू अरु तू भी मैं हूं, सब में हूं सब तेरा है ॥ १८
तू मैं यह सब छोड़ भेद, क्या तेरा है क्या मेरा है।
तू ही तू सब मैं ही मैं, कुछ नहिं तेरा नहिं मेरा है ॥ १९
मैं हूं ब्रह्म मैं ही माया हूं, मैं ही जीव कल्पित अज्ञान।
सूक्ष्म सूक्ष्मसे अतिशय मैंहूं, अरु महानसे अधिकमहान॥२०

मोहन ने मुरली में भरकर, मधुर मधुर गाई यह तान।
नर नारी सब शांत होगये, उनका मिटा मूल अज्ञान ॥२१

किसी गाय के मुखमें त्रण था, त्रण दबाय वह खड़ी रही।
दूध दही मटकी शिर धर के, नारी तकती अड़ी रही ॥२२

मोर पंखि पंख फैलाये, जैसे थे वैसे हि रहे।
गोप सखा दृष्टि ठहराये, जैसे थे वैसे हि रहे ॥ २३

गुरुकुल को जाते बालक सब, जाना गये वहाँ का भूल।
प्यारी राधिका भूल आपको, कृष्ण रूप होगई समूल ॥२४

कृष्ण आप बंशीधर चुप हो, बेसुध हुए मग्न विज्ञान।
निर्विकल्प ब्रह्म भाव में, उनका लगा समाधी ध्यान ॥ २५

देखा राधा को मोहन ने, पूर्ण हुई कल्पना शान्त।
राधा लीन भई मोहन में, चित्त हुवा केवल निर्भ्रान्त ॥२६

उसको हंसकर बंशीधर ने, निज स्थान से दिया जगा।
आंख खोल कर उसने देखा, मोहन बोले हे राधा ॥ २७

सुन मेरा उपदेश प्रसन्न हो, पाया जो कुछ उसमें स्वाद।
जो समझा सो हमें सुनादो, कहदो सर्व सार संवाद ॥२८

हाथ जोड़ सविनय मोहन को, पहले उसने किया नमाम।
बोली गदगद हो, कहतीहूं, यथा बुद्धि मैं हे घनश्याम ॥२९

कृष्ण आत्मा तुम हो मैं हूं, दुस्तर माया शक्ति सुजान।
मैं हूं संग तुम्हारे वृत्ति, ब्रह्माकार मुरलिया जान ॥ ३०

गोप गोपियां सकल वासना, और रूठना है हंकार ।
पट अज्ञान दूर जब होवै, पावे झांकी जय जयकार ।। ३१
गाय चराना खेल रचाना, खाना पीना अरु गाना ।
लीला है व्यवहार जगत का, हांसी बोली अरु ताना ।।३२
अयं आत्मा ब्रह्म, तत्वमसिऽहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्म प्रज्ञान ।
सर्व खल्विदं ब्रह्म, कहा यह, मुरली बजा वेदका ज्ञान।।३३
वासुदेव है सर्व जगत यह, जीवन्मुक्त समझते हैं ।
भेद लखें सो राग द्वेष युत, मोह जाल में फंसते हैं ।।३४
वासुदेव से भिन्न नहीं जो, वासुदेव की लीला है ।
लीला है सो वासुदेव है, वासुदेव सो लीला है ।। ३५
वर्षा पुष्पों की हुइ नभ से, अखंड ब्रह्मका हुवा प्रकाश ।
धन्य धन्य जयजय शब्दों से, गूंज उठा सारा आकाश ।।३६
सीताराम जो लखे निरंतर, राधेश्याम अथवा ध्यावे ।
उभय एक है जो समझे सो, तज अज्ञान मोक्ष पावे ।।३७

इति श्री बांसुरी लीला संपूर्ण ।

भजन ।

जीता रहूं सदा मैं मत प्राण तन से निकले ।
या आज ही मरूं मैं यह प्राण तन से निकले ।।१।।
कुछ भी नहीं है परवाह पर नाथ ये दया हो ।
यह दंभ दर्प लालच अज्ञान मन से निकले ।।२।।

मल पित्त बात कफ़ से यह देह भर रहा है ।
कुल जाति और धन का अभिमान तन से निकले ॥३॥
हम हाथ से जब अपने प्यारे जला चुके हैं ।
फिर हाय विष भरी क्यों यह आन तन से निकले ॥४॥
मैं सब की आत्मा हूं सब आत्मा है मेरा ।
ये भावना अटल हो फिर प्राण तन से निकले ॥५॥
मत वासना कोई भी मन में कभी उदय हो ।
सब वासुदेव सीता सब राम मन से निकले ॥६॥

भजन ।

जगतमें जीवनके दिन चार जगतमें जीवनके दिन चार ॥टेक
हितकर केवल है वैराग युत, सत्यासत्य विचार ।
ब्रह्म निष्ठ विद्वान जगत में, रखते शुभ व्यवहार ॥१॥
दंभ दर्प अभिमान क्रोध, पारुष्य कपट आचार ।
यह असुरन की संपति भाषत, मोहन कृष्ण मुरार ॥२॥
सत्य सत्य है भाषो कोई, अन्त्यज नर अरु नार ।
योग ज्ञान लागत सब फीके, बिन समता सुख सार ॥३॥
लोक रिझावन शोक बढ़ावन खान पान भण्डार ।
मोक्ष धर्म तज चूल्हे प्रीती भाड़ पड़ो आचार ॥४॥
बिन निष्ठा के ज्ञान ऐसा है ज्यूं वैभव शृंगार ।
वैतृष्णा हीन योग ठग विद्या वेश्या को व्यवहार ॥५॥

अंतर ताप छूटे बिन सब ही झूठी ब्रह्म पुकार ।
अशरण शरण एक तू ही है सीताराम भरतार ॥६॥
वैलासिक मति अन्य नहीं है सब हिंसा विस्तार ।
अंतर ताप छुटे बिन सब ही झूठी ब्रह्म पुकार ॥७॥

श्री हरिशरण स्तोत्रं ॥

विधाता सर्वजगका तू हरिः है, नियम संहारकरता भी सही है
जहां ढूंडा वहां पाया तुही है, जिधर देखा तो तेरा रूप ही है।
इसीसे मैंशरण आयातुम्हारी, दया मुझपरकरो हे विश्वधारी।१
कोई मेरे पिताहै और न माई, न मेरा कोई बंधू और न भाई
न कोई पुत्र पुत्री और लुगाई, तुम्हीं बस मेरे इकही हो सहाई।
तुम्हारेही मैं दरकाहूं भिखारी, दया मुझपरकरो हे विश्वधारी॥२
किया पलभर न मैं चिन्तन हरीका, किया सेवन न तीरथभी कोईसा
न श्रद्धा से कभी की देवपूजा, विधी से की बड़ों की भी न सेवा
तुम्हींने सबकी बिगड़ीको संवारी, दयामुझपर करोहे विश्वधारी३
कियेपहिलेसे मैंनेदुष्टजोकाम, उन्हें जब याद करताहूंमैं जिसठाम
तोदिलहै कांपता होकरबेआराम, पतितपावन भीतोहैआपकानाम
रटन है नामकी तेरे मुरारी, हुं शरणागत तेरी हे विश्वधारी ।४
सदा दुर्वासना ने मुझको फेरा, मेरे चित को नहीं देती बसेरा

मेरे तनको तो रोगोंने भी घेरा, मेरा जीवनभी परके हाथ गेरा
मेरीसारी समझ रस्ते सिधारी, दया मुझपरकरो हे विश्वधारी ५
बुढापे जन्मके दुख रोगभारी, सुवर कुत्तोंकी योनी बहुत सारी
येसबफलभोगती ईश्वर बिसारी, भटकती फिरतीहैदुनिया बिचारी
तुम्हींको जगमेंदेखा पापहारी, हूं शरणागत तेरीहे विश्वधारी।६
भलाजोनीचहो पापोंसेभरपूर, बड़ानिन्दितभी होऔरबहुतहीक्रूर
तेरा ले नाम हो इकबेरि भ्रमदूर, तोदो निजलोक उसकोप्रेमरसपूर
इसीसेनाथहै बिनती हमारी, हूं शरणागत तेरी हेविश्वधारी।७
जो बचपनथा वो खेलोंमें गंवाया, बुरे सङ्कल्पने मुजकोसताया
नहीं रस्ता कोई तरणेका पाया, इसीसे मैं तेरे चरणोंमें आया
कहो क्योंनाथमेरीसुध बिसारी, हुं शरणागततेरी हेविश्वधारी८
तुम्हीरखतेहोईश्वर जगतकीलाज, सभीदीनोंके रखवारेमहाराज
तुम्हीनेद्रोपदीके करदियेकाज, कथाविख्यातहैं भारत में यह आज
सभामें जबवोअबला रोपुकारी, हूं शरणागततेरी हेविश्वधारी ९
मुझे हे नाथ पापों से बचावो, मेरे दिल के बुरे चिन्तन हटावो
मेरादिल अपनी भगतीमें लगावो, मुझे अपनीहि गोदीमें बिठावो
सहीजाती नहींअब देरभारी, हुं शरणागत तेरी हेविश्वधारी१०
किसीकी ईर्षा दिलमें नआवे, किसीको मत मेरी बाणी सतावे

किसीका जी नमेरा तन दुखावे, मेरा तनमन सभीके कामआवे
करूंमैं सबकीही सेवागुजारी, हुंशरणागत तेरीहेविश्वधारी११
मेरेदिलसे भरमका जल्दहोनाश,जहांदेखूं वहांपर तेरापरकाश
मेरेमनसेमिटेस्वारथकीसबआस, सभीकेदिलमेंभीहोमेराविश्वास
सभीकेघरकीभी मैंहूंबुहारी, हुं शरणागत तेरीहे विश्वधारी१२
सभोंकीआंखमेरीआंखबनजाय,सभोंकेदिलमेंमेरादिलसमाजाय
सभोंके दुखमें मेरादुख नजरआय, मेरेआनंदसे संसार लहराय
तेरी हस्तीमें हो हस्ती हमारी,हुंशरणागत तेरीहे विश्वधारी१३
भलाकिसजीनेपैहोवेउभरना, सभी तनकाजोइकदिनहोगुजरना
होमरनेसेअगर पहिलेहीमरना, तोफिर क्या मृत्युसे हैराम डरना
नहींपरवाहकुछमुझकोमुरारी, हुं शरणागततेरी हेविश्वधारी१४
तुम्हीनिर्गुणभीहोऔरतुमनिराकार,तुम्हींसबरूपसेहेनाथसाकार
तुम्हीनिजरूपसेरचकरकेदरबार, करोगेन्यायअपनेआप सरकार
मेरी अर्जीहै मर्जीहै तुम्हारी, हुं शरणागत तेरीहे विश्वधारी१५
वचन सब धर्मके अरु वेदचारी, पढे बहुग्रंथ रामायण विचारी
तोसबमें सबने तेरीजय पुकारी,तुम्हीहो पूज्य अरुतुमही पुजारी
निरंजनदेवगुरु ईश्वरअचारी, हुंशरणागत तेरीहे विश्वधारी१६
न सीताही रहीअरु नहिंरहे राम, नमथुरामेंरहे राधाव्रघनश्याम
नकोईदीनदुनियाबसकोनिष्काम सदाअपनीहीमहिमामेंसियाराम
कियाकरताहैहांसीअरुखिलारी, हुंशरणागततेरीहेविश्वधारी१७

भजन ।

स्वांस स्वांस पर ॐ ॐ कह बड़ा अमोलक स्वांसा है। टेक॥
स्वांस गया मंदिर से बाहर नहिं आवन की आसा है।
देह भवन में प्राण गमन का अद्भुत बना तमासा है ॥१
साबुन मल मल काया धोई पहरा मलमल खासा है।
अन्त समय जब प्राण गये तब मरघट सबका बासा है ॥२
समय पड़े पर चलना होगा भेद न रत्ती मासा है।
बने तो कुछ तैयारी करले चलना सफ़र कड़ासा है ॥३
पंच कोश से न्यारा तू ज्यूं मुंजी मांह कपासा है।
अस्ति भाति प्रिय ब्रह्म जगत ज्यूं मिश्री मांह बतासा है ।।४
बिन विचार परमात्म लखे तो, जीवन भर दुख रासा है।
काल चक्र नित् चले निरन्तर अबके तेरा पासा है ॥५
सुत नारी गृह धन संपति सब केवल शब्द बिलासा है।
कहत रामजी देखत देखत योंही जगत बिनासा है ॥६
स्वांस स्वांस पर ॐ ॐ कह बड़ा अमोलक स्वांसा है ॥

प्रार्थना ।

आनंद रूप प्यारे सूरत जरा दिखाजा।
छिप छिप के मत दुखा जी नजरों में जल्द आजा ॥टेक॥
तन मन वचन हमारा अरु प्राण तक भी सारे।
सब तुझ पे हमने वारे अब सामने तो आजा ॥

धन माल और नारी लगती नहीं हैं प्यारी।
तेराहि हूं भिखारी मेरे समीप आजा ॥
वैराग और शमदम हों कुछ जो हम में साधन।
महा वाक्य भर के बन्सी मोहन हमें सुनाजा ॥
चिन्मात्र एक सत्ता व्यापक अखण्ड देखूं।
मन में न और आवे युक्ती हमें बताजा ॥
यह देह प्राण अरु मन बुद्धी भी अरु तमोगुण।
इन से परे जो तू है न्यारा मुझे लखा जा ॥
यह नाम रूप परदा दिल से मेरे हटादे।
अद्वैत ब्रह्म पूरण अपना दरस दिखा जा ॥
यह देह जग है मिथ्या सत आत्मा में कल्पित।
निज ज्ञान रूप मेरे मन में मेरे समाजा ॥
अति प्रेम का विषय है सत्ता स्वरूप तेरा।
गोदी में अपनी थपकी देकर मुझे सुलाजा ॥
आनन्द सिंधु में नित आनन्द की तरंगें।
हरदम उछल रही हैं निज प्रेम रस पिलाजा ॥
सङ्कल्प की यह रचना जग रूप भान मत हो।
तू ही तु आप भासे यह स्वप्न भ्रम मिटाजा ॥
जुग जुग तेरे लिये मैं जोगी बना फिरा हूं।
अब आप में मिलाके बिगड़ी हुई बनाजा ॥

सर्वात्मा निरञ्जन जो आप हूं मैं चिद्घन ।
यह राम रूप दर्शन तेरा तुझी को साजा ॥
तू राम तू हरिः है सब लोक भी तुही है ।
जग जीव आप ही है डंका ये ही बजाजा ॥

प्रार्थना ।

इस दर्द दिल की मोहन कोई दवा बतादो ।
मुरली अधर पे धर के इक तान तो सुनादो ॥
इकली हूं माधो बन में साथी न कोई जनमें ।
वैराग भी है मन में मुझ को जरा रुलादो ॥
मन में व्यथा बहुतसी क्या क्या सुनाऊं दिल की ।
इक हाथ अपना रखके मेरी जलन बुझादो ॥
मैं हूं विरह की रोगी अरु आप कृष्ण योगी ।
अभिमान का जो पट है मुझ से परे हटादो ॥
दिल में मेरे जलन है तन में मेरे तपन है ।
आखों में भी रुदन है समता मुझे सिखादो ॥
हे कृष्ण तुम हो ज्ञानी मैं आपकी दिवानी ।
तुमसा है कौन दानी गीता हमें पढ़ादो ॥
भर भर के दिल जो आवे गीता पढ़ी न जावे ।
दो ज्ञान के वचन से धीरज मेरी बंधादो ॥

ज्ञानाग्नि से जलाके अज्ञान सब मिटाके।
भस्मी मेरे लगाके जोगन मुझे बनादो ॥
हो दूर भेद दर्शन सब रूप तेरे मोहन।
सब वासुदेव पूरण मेरे हिये बसादो ॥
अच्छा ये हम ने माना सब तू हि है समाना।
माया का क्या बहाना ये भेद तो हटादो ॥
मुझ को हि जो समझते अरु प्रेम से हैं भजते।
माया में नहिं उलझते यह सांच कर दिखादो ॥
दुःखों में जा उलझना दीपक विवेक बुझना।
कठिनाइ से सुलझना यह दुःख है मिटादो ॥
तुझ को मेरी शपथ है भ्रम दूर कर कुपथ है।
या देखना हटादो या फिर नजर मिलादो ॥
तुझ बिन कहां सहारा क्यों कृष्ण नाम धारा।
या अपना प्रण निभादो या नाम को मिटादो ॥
जो पाप या धरम है सब ब्रह्म या भरम है।
क्या वेद का मरम है दिल में मेरे समादो ॥
सब भर्म है कहा है, यह कृष्ण की अदा है।
मोहन से नहिं जुदा है, बन्सी में भर के गादो ॥
श्री राम कृष्ण सीता इस प्रेम रस को पीता।
गाता रहे तु गीता आशीष यह सदा दो ॥

प्रार्थना ।

हम को बतादो प्यारे जाकर कहां छिपोगे ।
घर भी तो हो तुम्हारे जाकर कहां छिपोगे ॥
तन में रहो लुकाई देखे न कोइ जाई ।
वां देंगे हम गवाही जाकर कहां छिपोगे ॥
करणों के गोलकों में प्राणों में बुद्धि मन में ।
वां भी हूं ज्ञान घन में जाकर कहां छिपोगे ॥
विषयों में जो रमोगे वां भी बुरे फंसोगे ।
ज्ञाता बने हंसोगे जाकर कहां छिपोगे ॥
दुःखों में जाके रहना स्वांसों के बाण सहना ।
हम देंगे वां उलहना जाकर कहां छिपोगे ॥
जाकर लड़ोगे रण में अथवा हो घर में बन में ।
हम होंगे वांहि मन में जाकर कहां छिपोगे ॥
वेदों में जो रहोगे महावाक्य में रमोगे ।
सोहं हमें रटोगे जाकर कहां छिपोगे ॥
जो जो जगह तुम्हारी सत्ता है सब हमारी ।
दृष्टी तेरी हमारी जाकर कहां छिपोगे ॥
श्री कृष्ण कृष्ण गाना मुरली की धुन सुनाना ।
वां भी हमें हि पाना जाकर कहां छिपोगे ॥
श्री राम राम सीता यूं रामरस को पीता ।
गाता हुं राम गीता जाकर कहां छिपोगे ॥

प्रार्थना ।

हमारी आंख से परदा जरा हटा देना ।
निगाह हम से भी मोहन कभी लड़ा देना ॥
फिरा जो करते हो गलियों में रात दिन प्यारे ।
किसी गली में कहीं पांव मत जमा देना ॥
दिलों की बांसुरि में भरके ओम् ओम् का स्वर ।
हरएक रोम में इक ओम ही बसा देना ॥
उठाके पट दिया करते हो झांकी रसिकों को ।
वो ही अदा हमें इक बार फिर दिखा देना ॥
तुम्हारा रूप है गोविन्द सत्य चित् आनंद ।
दुई हटा के बस इक आप ही लखा देना ॥
हमें न तुम से जुदा और कुछ कभी भाया ।
तुम्ही गवाह हो मोहन खरी सुना देना ॥
तुम अपने दिल में मेरा चिन्ह भी कहां पाते ।
तुम्हें तो इष्ट है छाया तलक मिटा देना ॥
हमें जो देती है दुख याद तेरी माया की ।
सदा निवास से अपने उसे हटा देना ॥
तुम अपना देह उठालो चुरालो मन बुद्धी ।
मुझे न चाहिये कुछ मत कहीं फंसा देना ॥
भला कभी तो ये मोहन स्वभाव छोड़ोगे ।

इधर की बात को सुन कर उधर लगा देना ॥
कभी न बन में फिरें रोते हाय सीता राम ।
कोई हमें भी सिया का पता बता देना ॥

उपालंभ ।

श्री कृष्ण प्यारे मोहन चहे बोलो या न बोलो ।
सर्वात्मा निरञ्जन चहे बोलो या न बोलो ॥
माया के बन पुजारी देहाभिमान धारी ।
रीती सकल बिसारी चहे बोलो या न बोलो ॥
बेजान हो चुके हम बलिदान हो चुके हम ।
निर्मान हो चुके हम चहे बोलो या न बोलो ॥
माया से तेरि यारी लगती नहीं है प्यारी ।
जाती नहीं सहारी चहे बोलो या न बोलो ॥
मोटर महल अटारी नहिं दासियां सुखारी ।
पूजा नहीं पुजारी चहे बोलो या न बोलो ॥
जमना चढ़ी मनालो चलती पे जय बुलालो ।
गोविन्द गीत गालो चहे बोलो या न बोलो ॥
जोबन के दिन गंवाये अब अन्त के ये आये ।
कैसे हो सुध भुलाये चहे बोलो या न बोलो ॥
हां नाच ले नचाले यांके मजे उड़ाले ।
फिर तो लगेंगे ताले चहे बोलो या न बोलो ॥

नर नारि हो कि गो खर गृहस्थ वा यतीवर।
देह आत्मा बराबर चहे बोलो या न बोलो ॥

जोबन के चार दिन हैं जीवन के चार दिन हैं।
मोहन के चार दिन हैं चहे बोलो या न बोलो ॥

दिल की जलन बुझावो संताप सब मिटावो।
तब कृष्ण तुम कहावो चहे बोलो या न बोलो ॥

मुरली की धुन सुनाना अरु गोपियों का गाना।
बीता वो अब जमाना चहे बोलो या न बोलो ॥

माया का सब दिखावा गुरु शिष्य माइ बावा।
फिर तो छुटेगा दावा चहे बोलो या न बोलो ॥

मत दिल को अब सतावो मत युक्तियां सुनावो।
मत जाल में फंसावो चहे बोलो या न बोलो ॥

मेरी गली में आना राधा न साथ लाना।
तब कृष्ण मुंह दिखाना चहे बोलो या न बोलो ॥

श्री कृष्ण छब निराली तिस पर घटायें काली।
हो बन के आप माली चहे बोलो या न बोलो ॥

दृष्टी में छबि है प्यारी परवाह नहिं तुम्हारी।
श्री कृष्ण रासधारी चहे बोलो या न बोलो ॥

नहिं ताप जो मिटाया क्यों पीत पट रंगाया।
मन की तजी न माया चहे बोलो या न बोलो ॥

जी में है बांध लावूं और सैंकड़ों सुनावूं।
तब राम मैं कहावूं चहे बोलो या न बोलो ॥
मन में मेरे कन्हाई तेरी अदा समाई।
दे या न दे दिखाई चहे बोलो या न बोलो ॥
जो बांसुरी बजाना सीता रमण सुनाना।
श्रीराम कृष्ण गाना चहे बोलो या न बोलो ॥

अथ श्री चित्त चेतावनी।

आश नहीं है इक पल छिन की करले मन सुध मोक्ष जतन की॥टेक
बालपने के मित्र सिधारे भाई बंधु सब चलने हारे।
तुझको भी है जाना प्यारे, जाग सोच कर बाट चलन की॥१॥
कर विचार क्या करी कमाई, पाप किया क्या करी भलाई।
अबभी हो सचेत रे भाई, कर कुछ पूंजी नेक चलन की ॥२॥
भोगे भोग सभी सुखकारी, त्रष्णा रंच घटी न तिहारी।
अब तो राम चलन की बारी, करले संगत साधू जन की ॥३॥
यह संबंध भुलाना होगा, प्रीतम के घर जाना होगा।
संग न अपना बिगाना होगा, तोड़ सभों से प्रीति स्वप्न की ॥४॥
मित्र अरु बंधू प्रीति हु जोड़ें, अन्त समय सबही मुख मोड़ें।
तू नहिं छोड़े यह सब छोड़ें, तोड़ो मन सब चाह सुखन की॥५

धन दारा सुत मित्र सुखारे, नाशमान इक चमका सारे।
स्वार्थ हेतु सब साथ तुम्हारे, तुझको चिन्ता जन्म मरण की ॥६

जिनके हित तू पाप कमावे, जैसे तैसे कर धन लावे।
संग न आया नहिं कोई जावे, मत शिर गठरी धर पापन की ॥७

मोह अविद्या के बस भूला, क्या फिरता है फूला फूला।
अबभी चेत नहीं कुछ भूला, धार शरण दृढ़ हरि चरनन की ॥८

देह जगत यह जान विनाशी, आत्म ब्रह्म सत्य अविनाशी।
धार विवेक हिये सुखराशी, जाय गहो संगत संतन की ॥९॥

यह जग स्वर्गलोक लों सारो, मिथ्या स्वप्न समान विचारो।
सदा वमन ज्यूं भोग बिसारो, निर्भय गति वैरागीजन की।१०॥

दुख परिणामी भोग हैं सारे, दोष दृष्टि कर मन समझा रे।
बाहर इन्द्रिय दमन कर प्यारे, श्रद्धा कर गुरु वेद वचन की॥११॥

जो कुछ शिक्षा गुरु बतलावें, जन्म मरण के चक्र छुड़ावें।
धार हृदय दृढ़ जो मन ध्यावें, छुटे कल्पना आवागमन की ॥१२॥

यह जग बंध महादुख दाता, कब मुझ से छूटे यह नाता।
बिन हरि अन्य नहीं कोइ त्राता, मोक्ष हेतु कर यों रति मनकी १३

सतगुरु खोज चरण चित दीजे, तन मन धन अर्पण सब कीजे।
ब्रह्मज्ञान तिन मुख सुन लीजे, धार लग्न हिय दृढ़ साधन की ॥ १४

ब्रह्मनिष्ठ वेद को जाने, सो गुरु शिष्य रोग पहिचाने।
पथ्य करे अरु शिक्षा माने, होय सकल वृत्ति कंचन की ॥१५॥

चित के दुष्ट स्वभाव मिकारो, मन्द भावना मन की जारो।
शान्ति समता हृदय धारो, बोलो बाणी प्रेम वचन की ॥१६॥
मुख से कटू कभी मत बोलो, पहिले सोचो पीछे बोलो।
मत काहू की छाती छोलो, क्या आशा है कुछ जीवन की॥१७॥
मन के सब सङ्कल्प निवारो, एक आत्म चिन्तन हिय धारो।
मुख ते हरि का नाम उचारो, नाव यही है पार करन की ॥१८॥
देह अध्यास व्यर्थ हङ्कारा, काला नाग हिय फुंकारा।
अज्ञानी को चुन चुन मारा, औषधि एक हरि स्मरण की ॥१९
किस आशा के हेतु जलना, किस जीने पर अधिक उछलना।
फिरभी चलना फिरभी चलना, येहि रीति संसार भ्रमण की२०
ज्ञानीजन से मुदिता धारो, जिज्ञासू जन मित्र विचारो।
दीनन पर कर दया अपारो, करो उपेक्षा दुष्ट जनन की ॥२१॥
वैर विरोध करे किसते मन, जहां तहां तेरा प्रीतम दर्शन।
चार दिनों का यह जग जीवन, रहनी सहनी है दो दिन की॥२२॥
जग से झट पट नाता तोड़ो, सुख भोगन से मुख को मोड़ो।
एक प्रीति आत्महित जोड़ो, श्रवण मनन अरुनिदिध्यासनकी२३
पंच कोश से तू है न्यारा, चेतन रूप स्वयं उजियारा।
देह जगत है मिथ्या सारा, नाम रूप लीला चेतन की ॥२४॥
सतचित आनंद सागर भारी, जीव जगत हरि लहर सुखारी।

यह तो खेलत खेल खिलारी, हंसरुच देखो गति कर्मन की ॥२५

जितना जग प्रपंच कहावे, तू निज शक्ति द्वार उपजावे।
देख स्वप्न तूही भरमावे, अहो बहार सुख चेतन घन की ॥२६॥

द्वन्द धर्म जितने शीत उष्ण, ये नहिं तुझ में प्यारे दूषण।
शुद्ध आत्मा के हैं भूषण, ज्यूं रंगत नाना पुष्पन की ॥२७॥

पढ़ वेदान्त सतगुरु मुख द्वारा, तत्व शोध चेतन सुख सारा।
जहां तहां चिद आनंद प्यारा, रीति सीख ब्रह्म दर्शन की ॥२८

ज्योति में ज्योति परम मिलजावे, बिन्दू सागर मांह समावे।
योग ज्ञान फिर को समुझावे, रही न सत्ता किञ्चित मन की ॥२६

जीवरु ब्रह्म जगत मन माना, नहिं कहिं आना नहिं कहिं जाना।
आपहि आपन मांहि समाना, नहिं कोइ ग्रंथी जड़ चेतन की ।३०॥

देव निरंजन सतगुरु प्यारा, यति स्वरूप से हरि अवतारा।
सीताराम प्राण बलिहारा, शिर पर धारी रज चरनन की ॥३१॥

यह विचार है मन समझावन, जिज्ञासू हित बोध करावन।
सकल नसावे आवन जावन, छुटे जो चाह भोग सुखन की ॥३२

विज्ञान कुण्डलिका।

दिवाला निकला प्रीति का, प्रीतम रहा न कोय।
तीब्रुतर तम भेद सब, मन से डारे धोय॥
मन से डारे धोय, लगा गंगा में गोता।

प्रीति फंद के माँह, भला क्यों पड़ कर रोता ॥
सविनय भाषत राम, पिया अनुभव रस पियाला ।
निकल भर्म युत देह, प्रीति का भया दिवाला ॥ १ ॥
परम प्रेम का विषय है, केवल चिद् सुख सार ।
अर्थवाद युत भर्म है, झूठे नाते पियार ॥
झूठे नाते पियार, सीस छाती धर रोवे ।
धंसे कण्टकों मांह, प्रीति के कण्टक बोवे ॥
सविनय भाषत राम, सुनत ना शास्त्र को मरम ।
माया तरत अकाम, कृष्ण एव ध्यावे परम ॥ २ ॥
गोता गङ्गा में लगे, शीतल तन मन होय ।
राग द्वेष युत हृदय के, कल्मष जावें खोय ॥
कल्मष जावें खोय, सकल दुख होवत भञ्जन ।
इधर उधर सब रूप, नित्य भरपूर निरंजन ॥
सविनय भाषत राम, फिरे क्यों निस दिन रोता ।
श्री गङ्गा के मांह, लगेगा जिसका गोता ॥ ३ ॥
गंगा है विज्ञान की, दूजी बहती धार ।
तरन् तारणी युगल है, जो कोई जाने सार ॥
जो कोइ जाने सार, परस्पर हेतु हि माने ।
गंगा माहिं समाय, बृह्म चिद्द एक पिछाने ॥
सविनय भाषत राम, भेद से मन हो चंगा ।
जहाँ कहीं हो वास, व्यापिनी निर्मल गंगा ॥ ४ ॥

गोता शुद्ध स्वभाव का, जो कोइ चहे लगाव।
अखण्ड ब्रह्म चिद्र एक रस, निर्मल साक्षी भाव ॥
निर्मल साक्षी भाव, साक्ष्य देह जग से न्यारा।
केवल अपना आप, आप में आप पसारा ॥
सविनय भाषत राम, समझ कर रहे न सोता।
मारे चिद्र विज्ञान, गंग में बड़ कर गोता ॥ ५ ॥

गोता चिद्र विज्ञान में, जिसने दिया लगाय।
ज्ञाता ज्ञान अरु ज्ञेय सब, मिटी कल्पना हाय ॥
मिटी कल्पना हाय, गई सब आधी व्याधी।
रही अखण्डानन्द, ब्रह्मनिज रूप समाधी।
भाषत सविनय राम, अविद्या मल को धोता।
ब्रह्मरूप चिद्र सार, लगे चिद्र घन में गोता ॥ ६ ॥

प्रीति फांस को त्यागिये, प्रीती बुरी बलाय।
जोइ फंसा या जाल में, करत रात दिन हाय ॥
करत रात दिन हाय, मांग पी सके न पानी।
जला करे दिन रात, तपे काया मन बानी ॥
भाषत सविनय राम, बुद्धिमानों की रीति।
नाशमान संसार, मांह त्यागत हैं प्रीति ॥ ७ ॥

लिखना पढ़ना बोलना, सकल पत्र व्यवहार।
जब तक यह छूटे नहीं, तब तक दुख संसार ॥

तब तक दुख संसार, स्नेह अभिमान न टूटे।
प्रतीकूल अनुकूल, मांह निज मोह न छूटे॥
सविनय भाषत राम, होत जैसो घट चिकना।
ऐसो व्है सुख मिले, छोड़िये पढ़ना लिखना॥ ८॥

कविता प्रेम विलाप की, जो भेजी मैं तात।
मन आई सो लिख भरी, रही नहीं कुछ ज्ञात॥
रही नहीं कुछ ज्ञात, बही जो मन की धारा।
छुटी लेखनी हाथ, न जाने क्या लिख डारा॥
सविनय भाषत राम, आप तेजोमय सविता।
स्वयं प्रकाश निर्लेप, कहाँ कैसी वह कविता? ॥ ९॥

बात सत्य सो सत्य है, क्यों फिर आवे रोष।
अन्य सकल दूषित सही, आप सदा निर्दोष॥
आप सदा निर्दोष, चित्त भावे सो कीजे।
मुख पर मोहर लगाय, अन्य कोइ शब्द न छीजे॥
सविनय भाषत राम, आप रक्षक पितु मात।
छिमा करो कहनी पड़े, मुख तें सत्य जु बात॥ १०॥

माया ते माया मिले, लम्बे कर कर हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोइ न पूछत बात॥
कोइ न पूछत बात, कौन मुख ताइ लगावे।
निर्धन तो अति नीच, क्यों न तिहिं मार भगावे॥

सविनय भाषत राम, विभूती ढलती छाया।
तापर सन्त गुमान, ईश तेरी यह माया॥ ११॥

प्रेम नहीं श्रद्धा नहीं, ना कुछ भक्ति न मान।
धन दौलत सेवा नहीं, करत न कौड़ी दान॥
करत न कौड़ी दान, पास तब क्यों कोइ आवे।
सन्त संग बहु फौज, देखते जिय घबरावे॥
सविनय भाषत राम, यही माया को नेम।
नहिं जिसके धन धाम, कहो फिर कैसो प्रेम?॥ १२॥

कोइ मस्त गृहस्थ में, कोइ मस्त सन्यास।
उसके बन्धू बीस हैं, उसके शिष्य पचास॥
उसके शिष्य पचास, बड़ी संपति धन वाले।
गृहस्थ बन्धु जन राग, कामना से मुख काले॥
भाषत सविनय राम, हिये जिहि काम न होई।
धन्य धन्य सो धन्य, सन्त गृहि बिरलो कोई॥ १३॥

जाको पाती दीजिये, वाते रखिये काम।
पत्र लिखन हो राम को, कहा श्याम का नाम॥
कहा श्याम का नाम, यही तूंबी बदलाई।
विनय किया सौ बार, बात ना मन में आई॥
सविनय भाषत राम, कोइ कुछ लागे ताको।
वाही ते रख काम, पत्र हो लिखनो जाको॥ १४॥

शुद्धि नहीं व्यवहार की, व्यर्थ होत तकरार।
जातें मन संबंध है, वाही ते रख रार॥
वाही ते रख रार, अन्य क्यों भीतर साने।
हित की कहत पुकार, ताहि क्यों बैरी माने॥
सविनय भाषत राम, राम ने दीनी बुद्धि।
ले न अन्य को नाम, राख व्यवहारिक शुद्धि॥ १५॥

सो ही सो कह लीजिये, अथवा तू ही तू।
मैं ही मैं लख लीजिये, चित को कर इकसू॥
चित को कर इक सू, मौज से चिन्तन कीजे।
सर्वोऽहं चिन्मात्र, शुद्ध अमृत रस पीजे॥
सविनय भाषत राम, नित्य सत्ता पूरण जो।
भान रूप सब आप, आप सोही सो॥ १६॥

सर्व ब्रह्म विज्ञान घन, ताहि मांह अज्ञान।
ईश कंठ ज्यूं विष रहत, ताकी करत न हान।
ताकी करत न हान, भान ईश्वर से पावे।
दूर होय अज्ञान, ज्ञान से आप नसावे॥
सविनय भाषत राम, त्याग कर हं मम गर्व।
चिद स्वरूप विज्ञान, आप तू सर्व असर्व॥ १७॥

मेरा मोहन रूप है, मेरा जो अज्ञान।
वह मेरे उर में बसे, मैं राखत सन्मान॥

मैं राखत सन्मान, करूं जब उस पर दृष्टिः ।
जाने कहाँ लुकाय, न दीखत सह निज सृष्टिः ॥
सविनय भाषत राम, रूप सब कुछ है तेरा ।
कहो ब्रह्म अज्ञान, ज्ञान सब मोहन मेरा ॥ १८ ॥

ओट मांह जो होत है, भाषत ताहि परोक्ष ।
निजहि दृष्टि के मांह जो, ताहि कहत अपरोक्ष ॥
ताहि कहत अपरोक्ष, रहित जो पिण्ड ब्रह्मण्डा ।
साक्षि चिद् सर्वात्म, ब्रह्म सन्मात्र अखण्डा ॥
सविनय भाषत राम, इदं हं त्वं मम खोट ।
ब्रह्मरूप सब आप लख, निज अज्ञान है ओट ॥ १६ ॥

विधि निषेध ते हीन हैं, ना कोइ सन्त असन्त ।
उभय रहित ज्ञानी सदा, मुक्त भक्त भगवन्त ॥
मुक्त भक्त भगवन्त, सन्त गृहस्थ ब्रह्मचारी ।
वानप्रस्थ द्विज शूद्र, होय अन्त्यज नर नारी ॥
सविनय भाषत राम, विहीन कर्तव्य दयानिधि ।
ब्रह्म ब्रह्म में पूर्ण, नहीं कोइ ताह निषेध विधि ॥ २० ॥

करता दीखे वा नहीं, हंसे चढ़ावे भौं ।
उसे कौन सो कह सके, ऐसे करता क्यों ? ॥
ऐसे करता क्यों, करे सो उसकी मरजी ।
किसका उस पर दण्ड, त्याग दी जब खुदगरजी ? ॥

सविनय भाषत राम, भाव जो अन्य परखता ।
तापर विधि निषेध, लाख सो बनो अकरता ॥ २१ ॥

आप आप में ब्रह्म है, सब कर्तृत्व विहीन ।
अपने आप पसार के, क्यों मति राखे दीन ॥
क्यों मति राखे दीन, रखे तो कोइ न बरजे ? ।
आप होय मतिहीन, मौज देहोऽहं गरजे ॥
सविनय भाषत राम, बैठ जा हो चुप चाप ।
जो सुख नित्य चहे सदा, निष्प्रपञ्च लख आप ॥ २२ ॥

द्वेष राग बिन पास हो, अथवा भिक्षा लाय ।
अल्प यत्न तें मेध्य हित, मित् मधूकरी खाय ॥
मित् मधूकरी खाय, अल्प जल पीछे पीवे ।
पड़ा रहे निष्काम, घूम फिर निर्दुख जीवे ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्मवित् धरे न वेष ।
निज स्वरूप में मग्न, काल बीते बिन द्वेष ॥ २३ ॥

अनन्य भक्ति पावे वही, जो हो भक्त अनन्य ।
भक्त मुक्त वह आप है, श्रीपुरुषोत्तम धन्य ॥
श्रीपुरुषोत्तम धन्य, हीन परपञ्च असक्तिः ।
भक्त लखत निज रूप, अन्य में नहिं अनुरक्तिः ॥
सविनय भाषत राम, आप तो देखे अन्य ।
चहे फंसावन और को, फंसे सो आप अनन्य ॥ २४ ॥

बिगड़ो कहा स्वरूप को, हो यतिवर वा भांड ।
ब्रह्मचर्य से रह सके, अथवा राखत रांड ॥
अथवा राखत रांड, चित्त की जो कमज़ोरी ।
अपनी जाने आप, होय छोरा या छोरी ॥
सविनय भाषत राम, छोड़ सरदर्दी झगड़ो ।
तेरा स्वयं प्रकाश रूप, कोइ सुधरो बिगड़ो ॥ २५ ॥

क्या मुख लेकर बोलिये, जब सब अपना आप ? ।
किसको शिक्षा दीजिये, हरिये किसके ताप ? ॥
हरिये किसके ताप, कौन के दुःख निवारे ? ।
का को हिये लगाय, कौन को बाह्य निकारे ? ॥
सविनय भाषत राम, आप जब सम्यक् द्रष्टा ।
कहे सुने फिर कौन, किसे मुख लेकर क्या ? ॥ २६ ॥

वर विघात के वास्ते, कन्या देत विवाह ।
ऐसी मति के भाग्य को, धन्य धन्य है वाह ! ॥
धन्य धन्य है वाह !, दृष्टि राखे जो अन्या ।
शुद्ध ब्रह्म को बाध, करत दे निज मति कन्या ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्म सब विश्व चराचर ।
अन्य वासना त्याग, ब्रह्म धारे मति नरवर ॥ २७ ॥

निरंजन शुद्ध स्वरूप है, अद्वय स्वयं प्रकाश ।
मलिन अविद्या रोप ते, होत सुचिह्न आभास ॥

होत सुचिद्ध आभास, करत देहोऽहं मोरी।
भोगत भर्म विलास, स्वरूप की करके चोरी॥
सविनय भाषत राम, दुःख यह मन को रंजन।
तजे अविद्या रोपु भर्म, फिर आप निरंजन॥ २८॥

निरंजन पूर्ण निज आप है, फिर क्यों मिटत न भूक?।
राग द्वेष भय मन बसे, क्यों चाटत है थूक?॥
क्यों चाटत है थूक, रखे फिर क्यों कुछ रगड़ा?।
राखत चहे मरोड़, तजत ना सारा झगड़ा॥
सविनय भाषत राम, ज्ञान को डारो अञ्जन।
युक्ति भुक्ति पुनरुक्ति, त्याग हो रहो निरंजन॥ २९॥

दृष्टि ब्रह्म उर धार के, जो कुछ होत विहार।
बेशक खुल्ले वर्तिये, तज दुर्जन आचार॥
तज दुर्जन आचार, चाल सूधी सुखदायक।
सदाचार सुख देत, बोधयुत त्याग सहायक॥
सविनय भाषत राम, धार शिर अमृत वृष्टिः।
क्यों ढोवे भ्रम भार, त्याग कर चिन्मय दृष्टिः॥ ३०॥

यह मेरे अनुकूल है, वह मेरे प्रतिकूल।
सो दृष्टिः भ्रम रूप है, ताहि कहत हैं भूल॥
ताहि कहत है भूल, शूल सम हिय में लागे।
भाव अन्यथा जीत, नित्य सुख अपनो जागे॥

सविनय भाषत राम, हर्ष युत सब कुछ सह ।
सब ही है अनुकूल, नहीं प्रतिकूल लखे यह ॥ ३१ ॥

देखें चिद्घ विन अन्य कुछ, फूटे भले सुनैन ।
भेद लखे अद्वैत में, कौन काम की सैन ॥
कौन काम की सैन, चैन तो कभी न पावे ।
दुखी रहत दिन रैन, और कुछ हाथ न आवे ॥
सविनय भाषत राम, मिटें कर्मन की रेखें ।
सर्व ब्रह्म चिद्घ रूप, दृष्टि निज मात्र जु देखें ॥ ३२ ॥

लखे तो लख निज यार को, ओ दिल बेईमान ।
निज स्वरूप दीदार में, हो बे दिल बेजान ॥
हो बे दिल बे जान, यार तेरा तुझ माहीं ।
सोहं सोहं रटत, कृष्ण डारे गल बाहीं ॥
सविनय भाषत राम, त्याग सरदर्दी झख झख ।
वासुदेव सब रूप, आत्मा सो में चिद् लख ॥ ३३ ॥

बासुदेव सर्व सदा, फिर कैसा दुख दर्द ॥
वासुदेव क्यों ना लखे, मत बन मन नामर्द ॥
मत बन मन नामर्द, कही फिर किसकी माने ? ।
वासुदेव जब आप, सर्व निज रूप बखाने ॥
सविनय भाषत राम, सर्व कृष्णोहं एव ।
सदसच्चाहं अरजुन, कहत जु बासुदेव ॥ ३४ ॥

चिपट रहा किसके गले, गृहस्थ और सन्यास ।
ब्रह्मचर्य को स्वांग वा, दुर्गम बन को बास ॥
दुर्गम बन को बास, वर्ण आश्रम देहोऽहं ।
सर्व कल्पना भर्म, त्याग कर लख सर्वोहं ॥
सविनय भाषत राम, असद्‌ अविद्या है कपट ।
लख पावे विश्राम, रहा भर्म किसके चिपट ? ॥ ३५ ॥

अन्तर बाहर एक रस, दूजी दूर बलाय ।
नेति नेति से ब्रह्म लख, फिर क्यों मिटे न हाय ॥
फिर क्यों मिटे न हाय, भेद के ढोवे गट्ठे ।
मैं तू वह मम धार, फंसे उल्लू के पट्ठे ॥
सविनय भाषत राम, समझ मन नित चिन्तन कर ।
अद्वै ब्रह्म सुख रूप, आप "मैं" बाहर अन्तर ॥ ३५ ॥

घर घर हांडी चाट कर, जो नित्‌ लेते स्वाद ।
इक गृहस्थ को सन्त जन, फिर क्यों करते याद ॥
फिर क्यों करते याद, मान जो घर घर पाया ।
सब अपने घर बार, गये जिस घर मन चाहा ॥
सविनय भाषत राम, कृष्ण मोहन हैं यतिवर ।
फिरते माखन चोर, चाटते हांडी घर घर ॥ ३६ ॥

चित्त भ्रमर चित चोर के, चरण कमल को धाय ।
कृष्ण बसे जब चित्त में, आप त्याग कहाँ जाय ॥

आप त्याग कहाँ जाय, आप में बसे जु मोहन।
बासी टुकड़े खाय, छोड़ कर हलवा सोहन ? ॥
सविनय भाषत राम, आप में मोहन मित्त।
छोड़ कहां फिर जाय, भ्रमर जो अपना चित्त ॥ ३७ ॥

लाल तेरा तुझ पास है, मेरा मेरे पास।
सुन कर ऐसी बात क्यों, होते संत उदास ॥
होते संत उदास, करत क्यों पकड़ा धकड़ी।
अपनी अपनी मौज, बजावे जिसकी ढपड़ी ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्म साक्षि गोपाल।
सबका सबके पास है, अपना अपना लाल ॥ ३८ ॥

अन्य भेद की दृष्टि तें, जो कोइ लाल दिखाय।
सो तो उसके पास है, फिर क्यों देखन जाय ॥
फिर क्यों देखन जाय, पास अपने जो होवे।
घर का जोगी छोड़, अन्य की शरणी जोवे ॥
सविनय भाषत राम, तजे जो दृष्टिः अन्य॥
मैं तू वह यह भेद, हीन, सो लाल अनन्य ॥ ३९ ॥

जैसे मुख में काढ के, चारा अपने माय।
बैठी बैठी मौज तें, करत जुगाली गाय ॥
करत जुगाली गाय, बैठ पावे सुख तृप्तिः।
तैसे ही विद्वान, आप चितवे चिद ज्ञप्तिः ॥

सविनय भाषत राम, करे चिद्‌ चिन्तन ऐसे ।
कर विचार अद्वैत, लहे सुख जैसे जैसे ॥ ४० ॥

नाम रूप का भेद है, तज दे मन तत्काल ।
स्वप्रकाश विज्ञान घन, तू लालों का लाल ॥
तू लालों का लाल, दमक तेरी है लाली ।
देह जगत ते हीन, आप तज भेड़ा चाली ॥
सविनय भाषत राम, अखण्ड सत्ता मम धाम ।
लाल तुही घनश्याम है, छोड़ रूप अरु नाम ॥ ४१ ॥

लाल तुही लाली तेरी, नहीं लाल से भिन्न ।
लाली बिना न लाल है, दोनों भाव अभिन्न ॥
दोनों भाव अभिन्न, छोड़िये देखा भाली ।
दोष दृष्टि किस काम, आप मन तजो कुचाली ।
सविनय भाषत राम, ब्रह्म बिन माया जाल ॥
शिव शक्ति युत एक है, ज्यों लाली युत लाल ॥ ४२ ॥

पागल अपने आप में, लखता नाना भाव ।
सोइ विपर्जे भावना, बकत रङ्क को राव ॥
बकत रङ्क को राव, आप देहोऽहं भाषे ।
ईश जीव जग भेद, एक में नाना राखे ॥
सविनय भाषत राम, आय अज्ञान पड़ा गल ।
भूल शिवोऽहं, देह, आपको देखे पागल ॥ ४३ ॥

आत्म अनुग्रह से लखे, यह अद्वैत अखण्ड ।
मैं सत्चित् आनन्द हूं, पूर्ण रहित पाखण्ड ॥
पूर्ण रहित पाखण्ड, राग तजि भोग असक्तिः ।
तन मन बचन चढ़ाय, भेंट पावे हरि भक्तिः ॥
सविनय भाषत राम, त्याग कर माया विग्रह ।
सर्व शिवोऽहं ज्ञान, होय, जो आत्म अनुग्रह ॥ ४४ ॥

मैला अपने तन मले, सो पागल कहलाय ।
नख शिख मल की देह, में कौन बकत "मैं" हाय ! ॥
कौन बकत मैं हाय, देह तो चल अरु नाशी ।
अद्वै सदा अखण्ड, आत्मा 'मैं' अविनाशी ॥
सविनय भाषत राम, देह जग भाव विषैला ।
असत् अज्ञ को भर्म, छोड़ देहोऽहं मैला ॥ ४५ ॥

सुरा पान कर जन सभी, मतवाले हो जात ।
त्यूं अज्ञान प्रभाव से, देहोऽहं है ज्ञात ॥
देहोऽहं है ज्ञात, भर्म सो तजिये जो हम ।
कृष्ण कहत सो तात, जानिये सदसच्चाहम् ॥
सविनय भाषत राम, भेद भाव तजिये बुरा ।
कृष्णार्पण जग देह, पी न अविद्या की सुरा ॥ ४६ ॥

तत्वमसि उपदेश तें, अहं ब्रह्म है ज्ञान ।
निष्प्रपञ्च सद्आत्मा, सो सर्वोऽहं जान ॥

सो सर्वोहं जान, अहं का अर्थ जु साक्षी ।
जगत देह अज्ञान, "नेति नेति" श्रुति भाषी ॥
सविनय भाषत राम, सकल अविद्या तम नसि ।
अद्वै एक अखण्ड, आत्म सत्ता जो तत्वमसि ॥ ४७ ॥

अन्य अज्ञ मैं तज्ञ हूं, यह माया भगवान ।
व्यर्थ कल्पना बहुत सी, लख मिथ्या अभिमान ॥
लख मिथ्या अभिमान, धार सीधी सी युक्तिः ।
सत बिन सकल असत्य, सत्य अद्वैचिद् ज्ञप्तिः ॥
सविनय भाषत राम, मैं रहूं मान्य अरु गण्य ।
लोक वासना काम, ब्रह्म तू पूर्ण अनन्य ॥ ४८ ॥

बालक पकड़न बुलबुला, चला नदी के बीच ।
डूबन लागा सन्त ने, पकड़ बांह ली खींच ॥
पकड़ बांह ली खींच, बाल जो मर्म न जाने ।
देख रम्य को धाय, एक कहना नहिं माने ॥
सविनय भाषत राम, कहत यों मुनि उद्दालक ।
श्वेतकेतु सत एक, सार तू तज भ्रम बालक ॥ ४९ ॥

पानी कैसे बुलबुले, देह बन्धु जग जान ।
झूठी है सब रम्यता, चलता ठाठ पिछान ॥
चलता ठाठ पिछान, रम्य लख क्यों तू धावे ।
मनोवृत्ति सब खींच, क्यों न चिद्घन में लावे ॥

सविनय भाषत राम, सन्त समभावत ज्ञानी ।
मृषा व्यक्ति बुलबुले, जान चिद् सत्ता पानी ॥ ५० ॥

भोग भोगि मेटन चहे, सकल वासना भ्रान्त ।
काष्ठ अग्नि के मांह ज्यूं , होत चित्त नहिं शान्त ॥
होत चित्त नहिं शान्त, पर्मार्थी मन फिर धावे ।
निकलन चहे निराश, बीच दलदल फंस जावे ॥
सविनय भाषत राम, भोग रोग युत सोग ।
योगी मन हो जाइये, त्याग अविद्या भोग ॥ ५१ ॥

रोटी कपड़ा औषधी, पोथी अरु सतसङ्ग ।
श्रद्धा भक्ति विराग युत, करत अविद्या भङ्ग ॥
करत अविद्या भङ्ग, सन्त श्रुति वचन पिछाने ।
गुह्य सैन दृढ़ धार, सार लख मन में ठाने ॥
सविनय भाषत राम, अविद्या सकली खोटी ।
पल पल ब्रह्म निहार, खाय जो हितकर रोटी ॥ ५२ ॥

मर्यादा बन्धन नहीं, मर्यादा शुभ गैल ।
सीधे रस्ते घूमते, फिरते करले सैल ॥
फिरते करले सैल, शास्त्र हैं हित की कहते ।
फंसत अविद्या बीच, धंसे जो तृण सम रहते ॥
सविनय भाषात राम, चाल रखते जो सादा ।
तृष्णा रहित जु तज्ञ, सन्त रखते मर्यादा ॥ ५३ ॥

बन्ध महा पहिचानिये, जो अलबेली चाल ।
काग छोड़ निज चाल को, चलत हंस की चाल ॥
चलत हंस की चाल, हंस सम कब चल सकता ।
भूला अपनी चाल, फिरे चहुं ओर भटकता ॥
सविनय भाषत राम, ज्ञान की लेकर गंध ।
फंसे अविद्या जाल में, कैसे हो निर्बन्ध ॥ ५४ ॥

जो दीखत सो सत्य है, यही नियम है नाथ ।
इन्द्रजाल को खेल हू, मिथ्या सत्य दिखाय ॥
मिथ्या सत्य दिखाय, और देखो निज स्वप्ना ।
स्वप्ना यह जग जान, भर्म चिरकाल कलपना ॥
सविनय भाषत राम, एक निष्कल सत्ता सो ।
तू मैं वह यह भर्म, भेद दीखत है जो जो ॥ ५५ ॥

निश्चय वह जो कृष्ण को, और सर्व भ्रम पाश ।
सद सच्चाहं भाव से, होत सर्व दुख नाश ॥
होत सर्व दुख नाश, भाव जो असली होई ।
सबका आपा कृष्ण, एक सत्ता है सोई ॥
सविनय भाषत राम, भेद है सकल कुनिश्चय ।
निश्चय अद्वै ज्ञान, कृष्ण सर्वोहं निश्चय ॥ ५६ ॥

बुद्धि सोइ सराहिये, जाको सम्यक ज्ञान ।
अज्ञानी बुद्धिः सदा, अप्रमाण तू जान ॥

अप्रमाण तू जान, बुद्धि नानत्व बखाने ।
बुद्धिः सोइ प्रमाण, जोइ एकत्व पिछाने ॥
सविनय भाषत राम, अन्य सब लखो अशुद्धिः ।
जो ब्रह्म विषय परि तात, धन्य धन्य सो बुद्धिः ॥ ५७ ॥

जैसी जाकी भावना, तैसा भाषत सोय ।
जैसा जो सम्यक् लखे, तैसा ही फल होय ॥
तैसा ही फल होय, आपको लखे जो पापी ।
सो है पापी अवश्य, पाप भोगे संतापी ॥
सविनय भाषत राम, धारणा मोहन कैसी ।
सद सचाई भाव, लखे मन भावे जैसी ॥ ५८ ॥

बीती आयुष जात है, पढ़ सुन कर वेदान्त ।
अभी तलक क्यों होत ना, यह मन मूरख शान्त ॥
यह मन मूरख शान्त, होतना लगी बीमारी ।
लोक बासना धार, आपको लखत आचारी ॥
सविनय भाषत राम, त्याग भोगन की प्रीति ।
तब होवे चित्त शान्त, जात है आयुष बीति ॥ ६५ ॥

जिसके मन को लग गये, जौन जौन से रोग ।
तिन में यह सब से प्रबल, चाह मान सुख भोग ॥
चाह मान सुख भोग, छोड़ सुकृत फल पाता ।
अपनी इच्छा राख, आप क्यों चित्त जलाता ॥

सविनय भाषत राम, रोग बढ़ जावें इसके ।
चाह मान सुख भोग, फंसी है मनमें जिसके ॥ ६० ॥

कांटा पैना मान का, अतिशय तीक्षण बाण ।
बेधत वेधत चित्त का करत बहुत घमसाण ॥
करत बहुत घमसाण, शोक मनमें रहे छाई ।
काम क्रोध अरु लोभ, किसी की नहि कमताई ॥
सबिनय भाषत राम, त्याग औरन का बांटा ।
चित में समता धार, मान का निकले कांटा ॥ ६१ ॥

पैना कांटा मान का, काढन चहे सुजान ।
आप देह आदर तजे, सबका राखे मान ॥
सब का राखे मान, रूप मोहन के जाने ।
मन तें करत प्रणाम, दोष क्यों मन में लाने ॥
सविनय भाषत राम, सर्व की कथनी सहना ।
बासुदेव सब जान, मान का कांटा पैना ॥ ६२ ॥

मिलती त्यागे शूर है, तू बिन मिलती त्याग ।
क्यों औरन सुख देख कर, मन में लागत आग ॥
मन में लागत आग, बुझा हो गुरु वा चेला ।
यों ही देखत जात, जगत छिन भर का मेला ॥
सविनय भाषत राम, धारणा थिर नहिं हिलती ।
ब्रह्म दृष्टि उर धार, छोड़ मिलती अन मिलती ॥ ६३ ॥

कहे कोइ सुन लीजिये, उलटे सुलटे बैन ।
गर्व मान मन राख के, मत खो निज सुख चैन ॥
मति खो निज सुख चैन, कृष्ण यूं लेत परिक्षा ।
कितना किसका ज्ञान, राग वैराग तितिक्षा ॥
सविनय भाषत राम, हाथ जोड़ सब कुछ सहे ।
मौन धार निष्काम, जो जिसके मन कुछ कहे ॥ ६४ ॥

भला बुरा जो भासता, तेरा चिन्तन आप
औरन में हो दीखता, तेरे मन का पाप ॥
तेरे मनका पाप, तुझे सन्ताप दिलावे ।
जैसे बोये बीज, आप वैसा फल पावे ॥
सविनय भाषत राम, समय यह छिनमें चला ।
वासुदेव सब आप, बुरा परख अथवा भला ॥ ६५ ॥

क्या तू नीति अनीति का, सब की ठेकेदार ।
वासुदेव सब जानकर, मन तज सकल विकार ॥
मन तज सकल विकार, क्यों न दुर्लभ पद पावे ।
सर्व ब्रह्म लख आप, भाव यह ताप नसावे ॥
सविनय भाषत राम, धार मोहन की आज्ञा ।
सङ्ग दोषकर त्याग, तुझे है मतलब क्या ? ॥ ६६ ॥

सभी ब्रह्म जाना सखे, सब कुछ कीन्हा दान ।
यह तो चोरी जानिये, रखते जो मद मान ॥

रखते जो मद मान, आत्मा की है चोरी।
साक्षी है तू आप बात सांची है कोरी ॥
सविनय भाषत राम, फुरे न भेद रंचक कभी।
रहे सदा निष्काम, चिद्‌ सत्ता देखे सभी ॥ ६७ ॥

मयूर पंख सम मन कहत कृष्ण मुकट में सोय।
आप कृष्ण सब कृष्ण लख, क्यों न कृष्ण मन होय ? ॥
क्यों न कृष्ण मन होय, कृष्ण सब रूप निरंजन।
साक्षि ब्रह्माभिन्न, आप अपने में चिद्‌घन ॥
सविनय भाषत राम, एक सत्ता भरपूर।
कृष्ण भाव में मन सदा, जैसे पांख मयूर ॥ ६८ ॥

मोहन मेरो आत्मा, मोहन मेरे प्राण।
मोहन मेरी जान है, कैसे दूंगी जान ॥
कैसे दूंगी जान, सखी अनजान बखाने।
मोहन राखत आन, बात यह कौन पिछाने ॥
सविनय भाषत राम, ज्ञान घन श्रुति गो दोहन।
छिन में छबि अज्ञान, धार छिप जाते मोहन ॥ ६९ ॥

निष्प्रपंच निर्देह जो, नाम रूप ते हीन।
अद्वैत पूर्ण अखण्ड सो, सत्ता निश्चय कीन ॥
सत्ता निश्चय कीन, वृत्ति को साक्षी जोई।
बुद्धि से परे स्वयं, प्रकाश अनुभव है सोई ॥

सविनय भाषत राम, भेद नहि इस में रञ्च ।
देह रहित चिन्मात्र एक, मैं विना प्रपञ्च ॥ ७० ॥

स्वस्वरूप विज्ञान घन, जो कर्तृत्व विहीन ।
तेरा अपना आप है, सकल कल्पना हीन ॥
सकल कल्पना हीन, वासना गन्ध न जा में ।
दुख का जहाँ न लेश, जगत आवेश न ता में ॥
सविनय भाषत राम, अखण्ड अनाम अरूप ।
अहं बिना नानत्व जो, साक्षिहू स्व स्वरूप ॥ ७१ ॥

बिन दर्शन बिन भावना, केवल दृशि स्वरूप ।
तेरा स्वतः स्वभाव है, तेरा सहज स्वरूप ॥
तेरा सहज स्वरूप, सोइ है तेरो ठिकानो ।
सावधानता राख, प्राप्त तब सहजा जानो ॥
सविनय भाषत राम, भावना बदलत छिन छिन ।
तेरा सहज स्वरूप, क्रिया दर्शन चिन्तन बिन ॥ ७२ ॥

अधिष्ठान आधार जो, सब प्रपञ्च का तात ।
सब निषेधि की अवधि जो, नेति नेति से ज्ञात ॥
नेति नेति से ज्ञात, सोइ अनुभव प्रतिबोध ।
वृति उपाधि विहीन, इदन्ता रहित विरोध ॥
सविनय भाषत राम, नहीं जो ज्ञान अज्ञान ।
अखण्ड आत्मा आप है, सो सर्वाधिष्ठान ॥ ७३ ॥

अहं ब्रह्म सर्वात्मा, निर्विशेष चिद्भान ।
सब का सत्ता स्फूर्ति मैं, यह अखण्ड विज्ञान ॥
यह अखण्ड विज्ञान, यही है सम्यक् निश्चय ।
या तें भिन्न अनात्म, भाव हैं सभी कुनिश्चय ॥
सविनय भाषत राम, सर्व अध्यस्त इदं त्वं ।
अहंकार संशान्त, आप सर्व सत्ता हं ॥ ७४ ॥

अहंभाव बिन मैं सदा, केवल चिद्घन रूप ।
सर्व विशेषण भाव से शून्य सोइ निज रूप ॥
शून्य सोइ निज रूप, सर्व से भाव अकृतम् ।
करत करत अभ्यास, रहत कर्तव्य न कृतम् ॥
सविनय भाषत राम, सर्व निश्चय पर अनहं ।
सोई शिव शुभ धाम, आप सर्व का जो हं ॥ ७५ ॥

जाति विजाति अरु स्वगत, भेद बिना जो आप ।
सो कारण सत आत्मा, बिन सब कला कलाप ॥
बिन सब कला कलाप, जगत तो सदा अकारण ।
सत्ता भिन्न असत्य, आप अध्यस्त, न कारण ॥
सविनय भाषत राम, कार्य कारण बिन जाति ।
सद सच्चाहं आप, अकारण और अजाति ॥ ७६ ॥

कृतृम तेरा देह है, कर्म वासना काम ।
पहली प्रज्ञा युत मिला, सर्व जीव को धाम ॥

सर्व जीव को धाम, जगत अरु आना जाना ।
जगत मोह सम्बन्ध, भोग सुख दुख के नाना ॥
सविनय भाषत राम, भाव मिथ्या यह कृतृम् ।
तेरा स्वयं स्वरूप, सहज निज भाव अकृतृम् ॥ ७७ ॥

तेरा अपना आप है, भाव रूप निर्भाव ।
बिन कुछ भेदाभेद के, सत्ता स्वयं स्वभाव ॥
सत्ता स्वयं स्वभाव, सोइ है सम्यक् शान्तिः ।
दुख की जहां न गम्य, आप केवल निर्भ्रान्तिः ॥
सविनय भाषत राम, बिना कुछ मैं अरु मेरा ।
निर्मल स्वयं स्वभाव, सहज आपा है तेरा ॥ ७८ ॥

अवस्था सब हैं चित्त की, चिद्घन सहज स्वरूप ।
अन्य भिन्न नहिं जानिये, केवल अनुभव रूप ॥
केवल अनुभव रूप, साच्य बिन साक्षिः जानो ।
अखण्ड आप चिद्भान, भेद परिछेद न मानो ॥
सविनय भाषत राम, कल्पना बिन जो स्वस्था ।
सोइ जानिये आप, चित्त की सहजावस्था ॥ ७९ ॥

बोध शक्ति जब हो उदय, भासत अपना आप ।
निर्दुख दृष्टा मात्र सो, रहित सकल संताप ॥
रहित सकल संताप, रहित कर्तृत्व क्रिया सब ।
स्वस्वरूप में मग्न, आप में आप भयो जब ॥

सविनय भाषत राम, सर्व संकल्प निरोध।
सहज अवस्था कर्म बिन, उदय शक्ति जब बोध ॥ ८० ॥

जो जो भाषत है जहां, अहं इदं त्वं भेद।
सो सो वहाँ न है कछु, मिथ्या सब परिछेद ॥
मिथ्या सब परिछेद, आत्मा सबका द्रष्टा।
देह अहं त्वं भेद, इदं मम सबका सृष्टा ॥
सविनय भाषत राम, इदन्ता सृष्टि रहित जो।
अनिदं अद्वै ब्रह्म, भाव भासत है जो जो ॥ ८१ ॥

चिद्द सत्ता में भान हो, जो जो जहां विशेष।
उसे वहाँ मत देखिये, चिद्द सत्ता अविशेष ॥
चिद्द सत्ता अविशेष, बिना सब भेद भाव चल।
जैसा चिता हमेश, वही सन्मुख भासत फल ॥
सविनय भाषत राम, भेद खेद में जो जिद।
सो विशेष नानत्व, तजो लख सत्ता चिद्द ॥ ८२ ॥

दिनकर छोटा है नहीं, भासत अल्प प्रमाण।
सो भ्रम दृष्टि से जानिये, नहीं अल्पता आन ॥
नहीं अल्पता आन, दिवाकर मांह न कोई।
तैसे जग चिद मांह, नहीं कुछ हुवा न होई ॥
सविनय भाषत राम, इदन्ता रहित चराचर।
दृश्य रहित अद्वैत, ब्रह्म दृशि जैसा दिनकर ॥ ८३ ॥

झिल मिल जो मणि में लसे, सो मणि प्रथक अभान ।
भिन्न प्रभा भासत सही, पै मणि रूप, न आन ॥
पै मणि रूप न आन, भिन्न भासे तो भासो ।
त्यूं चिद्‌ स्वयं प्रकाश, बाह्यवत् करत प्रकासो ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्म सत्ता बिन जग झिल ।
असद्‌ रूप अरु नाम, केवली केवल झिलमिल ॥ ८४ ॥

अद्वै में नानत्व है, ज्यूं जल मांह हिलोर ।
अद्वै मांह अभिन्न त्यूं, सो वह तू में मोर ॥
सो वह तू में मोर, भेद यह है दुखदाता ।
जो दुख छोडन चहे, भेद से तोड़े नाता ॥
सविनय भाषत राम, दुख जो जाने जग यह ।
बचनो चहे तो आंख, खोलकर लख ले अद्वय ॥८५॥

अहो अविद्या मोहिनी, धरे धर्म का रूप ।
राग द्वेष युत मन करे, संग्रह लोक स्वरूप ॥
संग्रह लोक स्वरूप, मुमुक्षुहि करत कुचैनी ।
अद्वैत ब्रह्म भुलाय, प्रवृत्तिः बहु दुख देनी ॥
सविनय भाषत राम, केवल सुख जो तुम चहो ।
लखो ब्रह्म सर्वात्म, धर्माधर्म अविद्या अहो ! ॥ ८६ ॥

जब कोई हितकर कहत, तुझ अवगुण की बात ।
अपने अवगुण बिन लखे, मत कर उस पर घात ॥

मत कर उस पर घात, दोष सज्जन मत देखें ।
अपना कर कल्याण, उसे हितकारी लेखे ॥
सविनय भाषत राम, छोड दुर्जन से मतलब ।
हित की कर स्विकार, दोष भाषे कोई जब ॥ ८७ ॥

शिक्षा सब से लीजिये, गुण सब के हिय धार ।
अन्य किसी के दोष क्या, अपने दोष हज़ार ॥
अपने दोष हज़ार, चाव से इक इक तजिये ।
बैठ होय चुप चाप, आप नारायण भजिये ॥
सविनय भाषत राम, अन्य से ले गुण भिक्षा ।
सब हरि के अवतार, कृष्ण लख लीजे शिक्षा ॥ ८८ ॥

विनय बिना विद्या सकल, करत वृद्धि हंकार ।
ताहि अविद्या जानिये, करत न निज उपकार ॥
करत न निज उपकार, अन्य का तो क्या होवे ? ।
स्वप्ने मांहि प्रबोध देखे, पैसो तो सोवै ॥
सविनय भाषत राम, हे हरि सविनय है विनय ।
हो विद्या निष्काम, करो सफल देकर विनय ॥८९॥

झिड़के क्यों कहते समय, पर को हित की बात ।
सहज प्रेम से बोलिये, तब हित की हो ज्ञात ॥
तब हित की हो ज्ञात, बात समझा कर कहिये ।
आप धार अभिमान, ऊंच बन ऐंठ न रहिये ॥

सविनय भाषत राम, चित्त ओछा सो तिड़के ।
सब मूरत घनश्याम, देख समझा मत झिड़के ॥ ६०

आदर सबका कीजिये, जैसा जिसके योग ।
जो पुनि शिर ऊपर चढे, सो वह उसका रोग ॥
सो वह उसका रोग, धैर्यसे बिनती कीजे ।
जो नहि माने छोड़, उसे निज रस्ता लीजे ॥
सविनय भाषत राम, सहन कर आप अनादर ।
जैसे जिसके योग्य, अन्य को दीजे आदर ॥ ६१ ॥

पलक मूंद कर बैठिये, जो न होय व्यवहार ।
जो कुछ वर्ते वर्तले, यथा शास्त्र आचार ॥
यथा शास्त्र आचार, इसी में लखो भलाई ।
सीधी सड़क निहार, चलो येही चतुराई ॥
सविनय भाषत राम, निरख सब चेतन की झलक ।
ऊपर लघु व्यवहार, अन्तर्दृष्टिः हर पलक ॥ ६२ ॥

तुम जो मोहन हो निरस, करो निरस मन मोर ।
जो तुम रसिया हे प्रभू, करो रसिक चित चोर ॥
करो रसिक चित चोर, चित्त के मोह मिटादो ।
अन्य सकल रस छोर, प्रेम रस परम पिलादो ॥
सविनय भाषत राम, भेद नर नार होय गुम ।
पुण्य पाप को नाम, मेट दो मोहन हम तुम ॥ ६३ ॥

आज्ञा जो मोहन मिले, तो कुछ कह दूं बात ।
बासुदेव सब में कहत, सब तुम ही हो तात ।।
सब तुम ही हो तात, आप में भेद लखो क्यों ? ।
आप जीव हो ज्ञात, जगत में खेद सहो क्यों ? ।।
सविनय भाषत राम, आपको रस मिलता क्या ? ।
हो बैठो चुपचाप, शेष जो मोहन आज्ञा ।। ६४ ।।

जीवन हित व्यवहार जो, सब ही में कुछ दोष ।
ऐसी क्या उपजीविका, जो कहिये निर्दोष ।।
जो कहिये निर्दोष, दुःख भी पड़े न सहना ।
आप होय निर्वाह, पड़े ना सुनना कहना ।।
सविनय भाषत राम, आप जो होवे अर्पन ।
साखी है घनश्याम, आप सबका उपजीवन ।। ६५ ।।

धर्म सर्व परित्याग के, लेहु कृष्ण की टेक ।
कृष्ण सच्चिदानन्द है, अखण्ड आप सब एक ।।
अखण्ड आप सब एक, भाव यह शरण कहावे ।
अन्य छोड़ सब धर्म, भर्म मत चित्त फसावे ।।
सविनय भाषत राम, कृष्ण बतलायो मर्म ।
आप अखिल घनश्याम, मृषा जो धर्माधर्म ।। ६६ ।।

परम अनादी ब्रह्म जो, सत् रु असत् न कहाय ।
कारण कार्य अव्यक्त अरु, व्यक्त कछु कहा न जाय ।।

व्यक्त कछु कहा न जाय, सदासद्व भेद रहित जो ।
निर्विशेष विज्ञान, अखण्ड एक साक्षी सो ॥
सविनय भाषत राम, नहि जा में धर्माधरम ।
बिना रूप अरु नाम, निरावरण सो है परम ॥ ६७ ॥

अद्वै एक अखण्ड जो, सर्वोऽहं चिद भान ।
साक्षि भावापन्न सो, ब्रह्म रहित अज्ञान ॥
ब्रह्म रहित अज्ञान, ज्ञान अरु साक्ष्य रहित जो ।
निरावरण विज्ञान, सदा अज्ञान रहित सो ॥
सविनय भाषत राम, आत्मा आपा निर्भय ।
निर्विभाग दुख भेद, बिना सो केवल अदूय ॥ ६८ ॥

जैसे को तैसो सदा, सारा ऐसो जोय ।
सो सबका आपा लखो, निर्विभाग है सोय ॥
निर्विभाग है सोय, भाग कतव्य अविद्या ।
निर्विभाग विज्ञान, सोइ भ्रम भेदक विद्या ॥
सविनय भाषत राम, नहीं ऐसो अरु वैसो ।
निर्विभाग विज्ञान, आप, जैसे को तैसो ॥ ६९ ॥

अज्ञ दृष्टि से श्रुति करे, अज्ञ भाव अनुवाद ।
फिर फिर बाध लखाय के, करत सोइ अपवाद ॥
करत सोइ अपवाद, ब्रह्म प्रमेय लखावे ।
श्रुति प्रमाण समझाय, आप अज्ञान नसावे ॥

सविनय भाषत राम, ब्रह्म स्वरूप है तज्ञ ।
श्रुति बोधत तू ब्रह्म है, नहीं अज्ञता अज्ञ ॥ १०० ॥

वृत्ति भेद ते भान व्है, ज्ञान और विज्ञान ।
वृत्ति रहित नहि ज्ञान है, नहीं कोइ अज्ञान ॥
नहीं कोइ अज्ञान, साक्षि अद्वय 'मैं' लख ले ।
रहित वृत्ति विज्ञान, ज्ञान घन आप परख ले ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्म ज्ञापक है वृत्तिः ।
अद्वय साक्षि स्वरूप, रहित जो वृत्ति अवृत्तिः ॥ १०१ ॥

आगे बढ़ना है भला, तज कर हलका भाव ।
ज्ञान कला नित् नित् बढ़े, पीछे हटे न पाव ॥
पीछे हटे न पाव, यही योगी चतुराई ।
मन का ढीला चाव, वासना गहरी खाई ॥
सविनय भाषत राम, सर्व प्रतिबन्धक त्यागे ।
बलयुत सत्य निहार, धीर पग धरिये आगे ॥ १०२ ॥

रोग बुद्धि कर्तव्य मय, विधि निषेध के बीच ।
शौच योग आचार में, मत धँस मर मन नीच ॥
मत मर धँस मन नीच, तेरा तो बड़ा ठिकाना ।
चिदाभास जीवत्व, ज्ञान अज्ञान सुजाना ॥
सविनय भाषत राम, सर्व संयोग वियोग ।
अनिदं अद्वै आप, त्यागिये कल्पित रोग ॥ १०३ ॥

अनिदं अदूय सर्व "मैं", ज्ञाता ज्ञेय विहीन ।
अखण्ड शान्त चिद्रु एक रस, सर्व भावना हीन ॥
सर्व भावना हीन, नहीं ज्ञानी अज्ञानी ।
ताना बोली कहां, जहां मन रहे न बाणी ॥
सविनय भाषत राम, भाव ये सहज अकृतृम ।
अदूय जो आनन्द, रूप निज सत्ता अनिदं ॥ १०४ ॥

सत् अद्वै आपा सदा, नहीं ज्ञान से प्राप्त ।
इदं दृश्य निर्मुक्त चिद्रु, स्वतः सिद्ध नित् आप्त ॥
स्वतः सिद्ध नित् आप्त, आश्रय विषय न कोई ।
केवल दृशि स्वरूप, दृश्य कुछ हुवा न होई ॥
सविनय भाषत राम, ज्ञान अज्ञान असत् सत् ।
सब विशेष निर्मुक्त, आत्मा "मैं" अदूय सत् ॥ १०५ ।

क्या फेना क्या बुलबुला, क्या जल बहती धार ।
क्या लहरें क्या हिम शिला, क्या वर्षा बौछार ॥
क्या वर्षा बौछार, विन्दु सागर जल कहिये ।
सब यह वारि स्वरूप, जानकर चुप हो रहिये ॥
सविनय भाषत राम, ब्रह्म है जग नहिं भैया ।
क्यों लेते जग नाम, एक सत्ता है अरु क्या? ॥ १०६ ।

दृष्टा तैजस भाव धर, देखत तैजस रूप ।
तैजस् दृष्टिः द्वार लख, तैजस सूरज धूप ॥

तैजस् सूरज धूप, तैजसी नाना कलना ।
सब विशेष तज देख, तेज ज्यों रहित कल्पना ॥
सविनय भाषत राम, दृश्य का तू ही सृष्टा ।
अपना आपा देख सर्व तू, दृश्य न सृष्टा ॥ १०७ ॥

फल पाया क्या आप लख, यह पूछी जो बात ।
आपा खोकर जो मिला, सो तुझको है ज्ञात ॥
सो तुझको है ज्ञात, आश पाशा में लटका ।
मैं मेरी दुख मांह, फिरा जन्मान्तर भटका ॥
सविनय भाषत राम, भेद भ्रम जाना निष्फल ।
आपा लख विश्राम मिला, ये ही पाया फल ॥ १०८ ॥

काम रहित सङ्कल्प बिन, जा में दम्भ न मान ।
राग द्वेष बिन सर्व हित, सो आरम्भ न जान ॥
सो आरंभ न जान, हुवा ईश्वर आज्ञा से ।
विघ्न पड़े क्यों आन, पड़े तो पड़ो बला से ॥
सविनय भाषत राम, आप जब हुवा अकाम ।
होना हो सो हो रहे, बिन सङ्कल्प अरु काम ॥ १०९ ॥

मान और सुख भोग को, मन में धारत दंभ ।
नाम लेत उपकार का, करते निज आरंभ ॥
करते निज आरम्भ, ढौंग रचते हैं नाना ।
विद्या अरु बैराग, युक्ति तप धर्म बहाना ॥

सविनय भाषत राम, जो ब्रह्म भूत विद्वान।
सुप्रसन्न निष्काम सो, तज इच्छा अरु मान ॥ ११० ॥

दान धर्म वैराग अरु, दया भाव उपकार।
अशुभ प्रवृत्ति त्याग में, सब जन का अधिकार ॥
सब जन का अधिकार, चित्त शुद्धी के साधन।
इनका फल विज्ञान, प्रथम सह ईश आराधन ॥
सविनय भाषत राम, प्रगट हों चिह्न भगवान।
सर्व ब्रह्म निज भाव में, करो इदन्ता दान ॥ १११ ॥

देह भोग सम्बन्ध हैं, यह तीनों दृढ़ बन्ध।
मैं देही हूं भोगता, अरु मेरे सम्बन्ध ॥
अरु मेरे सम्बन्ध, कल्पना दृढ़ कर रक्खी।
व्याकुल हो दे प्राण, शहद में जैसे मक्खी ॥
सविनय भाषत राम, मृत्यु अज्ञान लखो यह।
अमृत अद्वै ज्ञान, भ्रम संबंधी भोग देह ॥ ११२ ॥

महा दुःख रौरव नरक, जो शरीर में राग।
भोग रोग की खानि है, इससे कर वैराग ॥
इससे कर वैराग, स्वार्थ के सब सम्बंधी।
अपना हित जो चहे, मेट दे इच्छा अन्धी ॥
सविनय भाषत राम, सत्य ब्रह्म अरु सब मृषा।
आप होगये जीव, यह क्या दुःख नहीं महा ? ॥ ११३ ॥

निज स्वरूप से च्युत भये, इच्छा करत स्वराज ।
महा मोह में जा धंसे, मूढन के सिर ताज ॥
मूढन के सिर ताज, बने यतिवर ब्रह्मचारी ।
मिथ्या कह संसार, चहैं पुनि हों घरबारी ॥
सविनय भाषत राम, अविद्या नाना मति सृज ।
लेत धर्म की आड, भूलकर स्वस्वरूप निज ॥ ११४ ॥

अब क्या सांचा होगया, मिथ्या था संसार ।
अब अधर्म क्या छागया, पहला धर्म विसार ॥
पहला धर्म विसार, कर्मफल होगये झूठे ।
सुकृत पीछे डार, चहत सुख फिरते रूठे ॥
सविनय भाषत राम, सत्य एक जाना जब ।
पुनि आया अज्ञान, बने जीव क्या फिर अब? ॥११५॥

बासी लेखा होगया, बासी होगया ज्ञान ।
बासी सत्गुरु होगये, बासी शिष्य सुजान ॥
बासी शिष्य सुजान, शास्त्र बासी हैं कागज ।
बासी धर्माधर्म, और बासी आचारज ॥
सविनय भाषत राम, बुद्धियां भई न बासी ।
रोटी बासी ज्यूं भई, त्यूं मर्यादा बासी ॥ ११६ ॥

फिट् फिट् शिष्य कृतघ्न पर, जो राखत अति मान ।
फिट् फिट् गुरु पर जो कहत, निज उपकार बखान ॥

निज उपकार बखान, होत पूंजी में घाटा ।
चलती नहीं दुकान, शिष्य को धर कर डाटा ॥
सविनय भाषत राम, रात दिन होवै किट् किट् ।
शिष्य और गुरु देव, पड़े दोनों पर फिट् फिट् ॥ ११७॥

थू चेले के मुख विषय, गुरु से राखत दम्भ ।
आप भोग के वास्ते, मान कपट आरम्भ ॥
मान कपट आरम्भ, आत्मा अपनी ठगता ।
आपा चहत पुजाय, आप गुरु चरण न लगता ॥
सविनय भाषत राम, गुरु जो रागी बाबू ।
पुनि चेले कप्तान, दुहुन के मुंह पर थू थू ॥ ११८ ॥

जूता पत्री होत है, जहां रहत है काम ।
सत् गुरु मठधारी बने, चेला राखत वाम ॥
चेला राखत वाम, देख कर सत्गुरु जलते ।
चेले गुरु मठधाम, देख मन मांह उबलते ॥
सविनय भाषत राम, शिष्य तो असल कपूता ।
सत्गुरु निपट सकाम, चले दोनों में जूता ॥ ११६ ॥

युक्ती बाजी योग का, समझत पहला द्वार ।
युक्ति बिना योगी दुखी, हो मन से तकरार ॥
हो मन से तकरार, गुरु युक्ती बतलावे ।
अपना आप संभाल, शिष्य गुरु देव सिखावे ॥

सविनय भाषत राम भये पाजी से काजी ।
शिष्य भये गुरु देव, सीख कर युक्ती बाजी ॥ १२० ॥

पहिले दिन आते रहे, पहिली रही न बात ।
पहले घर दर बह गये, होगइ दिन से रात ॥
होगइ दिन से रात, राम थे हो गई सीता ।
भया अन्न से खात, फैल गई क्या कुछ गीता ॥
सविनय भाषत राम, चाल होगई रुपहली ।
होगइ दिन से रात, बात स्वप्ने की पहिली ॥ १२१ ॥

गो रक्षा गोविन्द की, गो ब्राह्मण हितकार ।
आप फँसत क्यों भर्म में बन माया भरतार ॥
बन माया भर्तार, बोझ क्यों शिर पर डाले ।
मोक्ष धर्म हिय धार, जीवता नहीं निकाले ॥
सविनय भाषत राम, भर्म से कर निज रक्षा ।
फल प्रद जो गोविन्द, आप करलें गो रक्षा ॥१२२॥ ॥

यह आपत्ति काल है, धर्म विषय अति गूढ ।
सतसङ्गी नर को करत, किंकर्तव्य विमूढ ॥
किं कर्तव्य विमूढ, प्रभु बहु कुमती छाई ।
पड़ सोये गोपाल, लुके जाकर रघुराई ॥
सविनय भाषत राम, चरण एक हरिजू के गह ।
शरण एक मम धाम, "माशुच" कहत कृष्ण है यह ॥ १२३ ॥

मृत्यु अन्य है ना कछु, केवल निज अज्ञान ।
निज प्रमाद से होत है, देहोऽहं यह ज्ञान ॥
देहोऽहं यह ज्ञान, देह को आपा जाने ।
प्रथक भोग सम्बन्ध, साथ अपने सत् माने ॥
सविनय भाषत राम, मरण बिन आत्म अमृत्यु ।
देह युगल विच्छेद, कार्य अज्ञान है मृत्यु ॥ १२४ ॥

भय मृत्युः अज्ञान है अद्वय आत्म अभय ।
अभय आप पहिचान कर, रहते जो निर्भय ॥
रहते जो निर्भय, दृष्टिः नानत्व अविद्या ।
निर्विभाग एकत्व, बोध कहलावे विद्या ॥
सविनय भाषत राम, अविद्या सगरी है भय ।
अभय अखण्ड चिद्भान, आप सो तू है निर्भय ॥ १२५ ॥

करना होना भासना, भावा भाव स्वभाव ।
कब तक शिर दे मारिये, पहलवान के दाव ॥
पहलवान के दाव, भयङ्कर बड़ी लड़ाई ।
भला वही जो भेद भर्म की, होय सफाई ॥
सविनय भाषत राम, सर्व अद्वैत सिमरना ।
याही में है मौज, और क्या होना करना ॥ १२६ ॥

ज्ञानी ओछा मन विषय, मानत कुछ सन्तोष ।
कृत्य कृत्य अब मैं हुवा, पाया ब्रह्म अदोष ॥

पाया ब्रह्म अदोष, दिखाता फिरता पूंजी ।
देखत मूढ अमूढ भावना ख्याती मूंजी ॥
सविनय भाषत राम, सुनावन चहै सुबानी ।
पचे न मन में ज्ञान, जानिये ओछा ज्ञानी ॥ १२७ ॥

सन्मुख कोई जो कहै, भेद दृष्टि की बात ।
सहन सहज हो ना सकै, सुमन सुमुख कुमिलात ॥
सुमन सुमुख कुमिलात, चहत सब होवें ज्ञानी ।
सब होजांय अचित्त, रहित काया मन बाणी ॥
सविनय भाषत राम, आप मत होय बहिरमुख ।
ओछापन तू छोड़, कोई कुछ भाषे सन्मुख ॥ १२८ ॥

अज्ञानी मन मारिये, ज्ञानी है संसार ।
अपना आप सँभारिये, सुधर जाय व्यवहार ॥
सुधर जाय व्यवहार, बने मत कुछ अभिमानी ।
छेड़ छाड़ मत राख, छोड़ दे खेंचा तानी ॥
सविनय भाषत राम, ज्ञान की यही निसानी ।
सर्व ब्रह्म सुख धाम, कौन ज्ञानी अज्ञानी ॥ १२९ ॥

आन्दोलन जग के निरख, मत मन धार विकार ।
जल को सहज स्वभाव है, उठत हिलोर हिलार ॥
उठत हिलोर हिलार, देखले अपनी शक्तिः ।
मत फँस माया कीच, छोड़ कर निज अनुरक्तिः ॥

सविनय भाषत राम, स्वरूप में जागे मोहन ।
तू मोहन उर धार, तुझे क्या जग आन्दोलन ॥ १३० ॥

सोय अकर्मी तज्ञ ने, किया जगत बरबाद ।
यूं मूढ़ों की बात सुन, मत मन धार विषाद ॥
मत मन धार विषाद, जगत बरबाद सदा ही ।
देह जगत कुछ हुवा नहीं, यह वेद गवाही ॥
सविनय भाषत राम, अन्य सब कर्मी होय ।
कहा भया जो ब्रह्मवित्, रहा अकर्मी सोय ॥ १३१ ॥

कर्मी ज्ञानी जग विषय, राम कृष्ण अरु व्यास ।
शङ्कर गौतम और बहु, रविवत् कियो प्रकास ॥
रविवत् कियो प्रकास, जगत के पूज्य सिधारे ।
जगत भर्म लख ब्रह्म, अन्त यह बचन पुकारे ॥
सविनय भाषत राम, धारिये क्या बेशरमी ? ।
अकर्म ब्रह्म, जग हुवा नहीं, फिर कैसो कर्मी ? ॥ १३२ ।

पृथवी में जो कुछ जगत्, भवन चतुर्दश साध ।
ईश दृष्टि से कीजिये, इदं सर्व यह बाध ॥
इदं सर्व यह बाध, करो जो, कल्पित उद्भव ।
त्याग द्वार से करो, आत्म रक्षा स्व अनुभव ॥
सविनय भाषत राम, अवस्तु ऐषणा सबही ।
मत पर धन ललचाय, वस्तु क्या धन अरु पृथवी ? ॥ १३३ ।

ज्युं का त्युं संसार यह, याहित क्या पुरुषार्थ ।
सब अपना हित चाहते, अपना अपना स्वार्थ ।।
अपना अपना स्वार्थ, कर्म फल भोगत न्यारे ।
अपना अपना चित्त, भेद अधिकारी न्यारे ।।
सविनय भाषत राम, धँसे माया में ज्यूं ज्यूं ।
त्यूँ त्यूँ पावे दुःख, जगत ज्यूँ का त्यूँ ।। १३४ ।।

ज्यूँ का त्यूँ जब चिद् लखा, फिर कैसा संसार ।
आना जाना बोलना, सिर दर्दी व्यवहार ।।
शिर दर्दी व्यवहार, अन्य की देखा देखी ।
देह पुजावन हेतु, त्यागिये झूठी सेखी ।।
सविनय भाषत राम, मान मन तजे न तू क्यों ।
छोड़ अन्य भ्रम भान, देख सत् ज्युं का त्युं ।। १३५ ।।

ज्युँ का त्युँ सब ब्रह्म है, किस पर विधिरु निषेध ।
तुझ को कुछ कर्तव्य हो, अपने मन को बेध ।।
अपने मन को बेध, तुझे क्या किससे कहना ।
निज मन का विस्तार, सोचना अरु चुप रहना ।।
सविनय भाषत राम, आप चिद लखिये ज्युँ ज्युँ ।
दृश्य दुःख मिट जात, आप केवल ज्युँ का त्युँ ।। १३६ ।।

उचित यथावत बात यह, वह अनुचित दर्शाय ।
भेद दृष्टि यह छोड़िये, सब मिटजावे हाय ।।

सब मिट जावे हाय, त्याग तुझ से नहिं होता ।
पर उपकारी बना हुवा, फिरता है रोता ॥
सविनय भाषत राम, जगत भी क्या कुछ है कचित ?
तज भ्रम कर आराम, क्या उचित क्या बिन उचित ॥१३७॥

ज्यूँ का त्यूँ सब देख कर, तजिये माया दम्भ ।
कृष्ण देव ने जब स्वयं, बरज दिया आरम्भ ॥
बरज दिया आरम्भ, फेरि उलटा ही धावे ।
कैसा ही संसिद्ध, अवश्यं वह दुख पावे ॥
सविनय भाषत राम, ईश से जिद करिये क्यूँ ? ।
तज दीजे आरम्भ, जगत ज्यूँ का त्यूँ ॥ १३८ ॥

ज्युँ का त्युँ छाया महा, भारत का जो युद्ध ।
सब उसमें संयुक्त थे, जो थे बुद्ध अबुद्ध ॥
जो थे बुद्ध अबुद्ध, सभी ने न्याय चुकाया ।
भावी टलती नांहि, घोर संग्राम मचाया ॥
सविनय भाषत राम, कृष्ण यह सब सहते क्यूं ? ।
हुवा न्याय बदनाम, जगत ज्यूँ का त्यूँ ॥ १३९ ॥

ज्यूँ का त्यूँ दुख रूप लख, तजदीजे अनुराग ।
याहित क्यूँ दुख भोगिये, रखिये दृढ़ वैराग ॥
रखिये दृढ वैराग, खोजिये सार सनातन ।
दुःख रहित सुख रूप, नित्य चैतन्य पुरातन ॥

सविनय भाषत राम, असत जड़ दुख भजिये क्यूँ ? ।
तत्व दृष्टि से सर्व, ब्रह्म लखिये ज्यूँ का त्यूँ ॥ १४० ॥

जो यह रचना ईश की, तो तुझ से क्या काम ।
जो यह कलना जीव की, सो वह उसका काम ॥
सो वह उसका काम, देखना उसको पड़ता ।
अपना तज विश्राम, बीच में तू क्यों अड़ता ॥
सविनय भाषत राम, न तू अपनी बुद्धी खो ।
वासुदेव सुख धाम, ईश की रचना यह जो ॥ १४१ ॥

कहां दृष्टि सब ब्रह्म मय, कहां कर्म अरु काम ।
ज्यूँ पूरब पश्चिम दशा, त्यूँ सकाम निष्काम ॥
त्यूँ निष्काम सकाम, ज्ञान अरु कर्म युगल जो ।
नहि दोनों इक ठाम, तेज अरु तमवत है सो ॥
सविनय भाषत राम, समुच्चय हैं लखते जहां ।
तहां अवश्य अज्ञान, ज्ञान कौन कर्मी कहां ? ॥ १४२ ॥

लोक दृष्टि से तज्ञ में, भासत जो व्यवहार ।
तज्ञ दृष्टि से ब्रह्म है, बाह्य दृष्टि आचार ॥
बाह्य दृष्टि आचार, ब्रह्म मय सम्यक् दृष्टिः ।
सत्य जगत व्यवहार, अज्ञ के मन में सृष्टिः ॥
सविनय भाषत राम, विहीन मोह अरु शोक ।
ब्रह्म दृष्टि है तज्ञ की, भाषो चहे जो लोक ॥ १४३ ॥

जौन काम में श्रम पड़े, फिर क्यों कीजे ताह ।
बेशक धन तज दीजिये, होकर बे परवाह ॥
होकर बे परवाह, दिया सो याद न लावे ।
यथाशक्ति धन धाम, काम सज्जन के आवे ॥
सविनय भाषत राम, देख हो रहिये मौन ।
असंग होय दे डारिये, बिन श्रम मांगे जौन ॥ १४४ ॥

अन्तर्मुख बिन यत्न है, बहिर्मुख श्रम से होय ।
देहोऽहं कर्तव्य मम, है बहिर्मुखता सोय ॥
है बहिर्मुखता सोय, पड़े करनी अरु कहनी ।
ब्रह्मभिन्न नहि कोय, यही अन्तर्मुख रहनी ॥
सविनय भाषत राम, अन्यथा दर्शन है दुख ।
तू मन मुखता छोड़, आप है फिर अन्तर्मुख ॥ १४५ ॥

लिङ्ग देह में है नहिं, नर नारी के भेद ।
नहीं भेद चैतन्य में, फिर क्यों दुविधा खेद ? ॥
फिर क्यों दुविधा खेद, देह दृष्टिः नहीं छूटी ।
करे अन्यथा भेद, ज्ञान की आंखें फूटी ॥
सविनय भाषत राम, आप तू सर्व अलिङ्ग ।
निः सामान्य विशेष, देह जग बिन जो लिङ्ग ॥ १४६

श्याम पगतरी पग विषय, पीत बसन मुख गौर ।
कलियुग में श्री कृष्ण जी, बने और से और ॥

बने और से और, धारली चाल जनानी ।
सखियन ठगने चले, कान्ह बन राधा रानी ।
सविनय भाषत राम, कृष्ण तो सदा अकाम ॥
ठगा गया मन मूढ, श्याम तो वोही श्याम ॥ १४७ ॥

शिव विस्मरण पिछानिये, यावत् जग जञ्जाल ।
नाम रूप नानत्व पुनः, कल्पित देश अरु काल ॥
कल्पित देश अरु काल, शीत उष्णादिक सहते ।
अविद्यमान अध्यास, पुत्र वंध्या सम कहते ॥
सविनय भासत राम, इदं अहं मम है अशिव ।
पुनः स्मरण होवै नहीं, लखिये सो विस्मरण शिव ॥ १४८ ॥

इति सीताराम कृत विज्ञान कुण्डलिका सम्पूर्ण ॥

अथ श्री आत्मषटक स्तोत्रं ॥

न मन बुद्धि हँकार नहिं चित्त भी हम ।
न हम श्रोत्र जिह्वा, नहीं घ्राण नेत्रं ॥
न अकाश भूमी, नहीं तेज वायुः ।
चिद्दानन्द रूपः, शिवोहं शिवोहं ॥ १ ॥

न हम प्राण पंचक्, नहीं हैं अनल हम ।
न जल हैं नहीं, धातु वा पंचकोशं ॥
न वाणी नहीं, पाद पायू उपस्थं ।
चिद्दानन्द रूपः शिवोहं शिवोहं ॥ २ ॥

मुझे राग द्वेषं, न लोभं न मोहं ।
न मद मेरो धर्मः, न मात्सर्य भानं ॥
नहीं धर्म अर्थ और, कामं न मोक्षं ।
चिदानन्द रूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ३ ॥
न पुण्यं न पापं, न सुख और दुःखं ।
नहीं मंत्र तीर्थ न वेदं न यज्ञं ॥
नहीं हम हैं भोजन, न भोक्ता न भोज्यं ।
चिदानन्द रूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ४ ॥
मुझे मृत्यु शङ्का न जाती का झगड़ा ।
न मेरे पिता ही, न जन्म और माता ॥
न बन्धू न मित्र अरु, गुरू है न शिष्यं ।
चिदानन्द रूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ५ ॥
मैं हूँ निर्विकल्प अरु, निराकार रूपं ।
हूँ व्यापक सभी, इन्द्रियों में सदाहम ॥
सदा मेरे समता, न मुक्ति न ममता ॥
चिदानन्द रूपः शिवोहं शिवोहं ॥ ६ ॥

अथ श्री विज्ञान नौका स्तोत्रं ॥

तप अरु यज्ञ दानादि, से शुद्ध बुद्धिः
नृपादिक पदों में, सदा तुच्छ दृष्टिः ।
परित्याग कर सर्व, पाते जो तत्वं,
परं ब्रह्मनित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ १ ॥

दयालुं गुरुं, ब्रह्मनिष्ठं प्रशांतं,
उन्हें पूज्यकर, भक्ति से लख स्वरूपं ।
निरन्तर सदा, ध्यान से लब्ध तत्वं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ २ ॥
जो आनन्द रूपं, प्रकाशक स्वरूपं,
प्रथक सब प्रपंचं, परिच्छेद शून्यं ।
अहं ब्रह्म इक वृत्ति, गम्यं तुरीयं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ ३ ॥
है अज्ञान से जिसके, सब विश्व भानं,
है जिस आत्म विज्ञान, से सर्व नष्टं ।
मनो वागतीतं, विशुद्धं विमुक्तं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ ५ ॥
जिस आनंद के लेश, में मग्न विश्वं,
सदा भान से जिसके, है ज्ञात सर्वं ।
जिसे जान कर वाध्य, अन्यत् समस्तं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ ६ ॥
अनन्तं विभुं, सर्व कारण अकर्मं,
शिवं संग हीनं, जो ओङ्कार लक्ष्यं ।
निराकार विज्ञान, जो मृत्यु हीनं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ ७ ॥
जिस आनन्द सागर, में डूबे पुरुष के,

नसें सब अविद्या, सहित जग के खटके ।
जो चैतन्य सब का, है अद्भुत निमित्तं,
परं ब्रह्म नित्यं, वही आप मैं हूँ ॥ ८ ॥

स्वरूपानु चिन्तन, स्वरूप स्तुति यह,
पढ़े जोइ आदर से, अरु भक्ति पूर्ण ।
सुने वा जो जन, नित्य उत्साह युक्तं,
यह वेद्यं प्रमाणं, वह है विष्णु रूपं ॥ ६ ॥

अथ श्री "निर्वाण दशकं" स्तोत्रं ॥

न भूमिः न जल है, न तेज और वायुः,
न आकाश इन्द्रिय, न एकत्र सब हम ।
स्वयं आप केवल, सुषुप्ती में चेतन,
वोही एक अवशिष्ट, शिव केवलोहं ॥ १ ॥
न वर्ण और आश्रम, न आचार धर्म,
मुझे धारणा ध्यान, नहिं योग आदिक ।
अनात्माश्रयाहं, न अध्यास कोई,
वोही एक अवशिष्ट, शिव केवलोहं ॥ २ ॥
न माता पिता है, नहीं वेद लोकं,
व वेदं न यज्ञं, न कहते हि तीर्थं ।
सुषुप्ती में द्रष्टा, नहीं याते शून्यं,
वो ही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ३ ॥

नहीं सांख्य शैवं, नहीं पञ्च रात्रं,
नहीं जैन मीमांसकादिक मतों के।
विशेषानुभव से विशुद्धात्मकंहम् ,
वो ही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ४ ॥
न ऊर्ध्व अधोहं, न अन्तर्न बाह्यं,
न मध्यं न टेढे न पूर्वा परादिक ।
हैं नभ सम विभू, यों अखण्ड एक रूपं ।
वो ही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ५ ॥
न श्वेतं न काले न लाल और पीले,
न कुबड़े न मोटे न छोटे न दीर्घ ।
नहीं रूप ज्योतिः न आकार कोई,
वो ही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ६ ॥
न शाशक न शास्त्रं , न शिष्यं न शिक्षा,
न तू है न मैं हूँ न संसार भी यह ।
जो निज रूप ज्ञानं, न सहता बिकल्पं,
वो ही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ७ ॥
न जाग्रत मुझे, स्वप्न वा घोर निद्रा,
न विश्वं न तैजस, नहीं प्राज्ञ कोई ।
यह तीनो अविद्या, इन्हों से अलग मैं,
वो ही एक अवशिष्ट, शिव केवलोहं ॥ ८ ॥
है व्यापक सदा, तत्व निश्चय से जाना,

स्वतः सिद्ध है अरु, निराधार है वह ।
अलग उस से सारा, जगत तुच्छ न्यारा,
वोही एक अवशिष्ट शिव केवलोहं ॥ ९ ॥
नहीं एक भी द्वैत हो अन्य कैसे,
न कह सकते केवल, अकेवल भी कोई ।
न शून्यं अशून्यं, है जब आप अद्वय,
करूँ श्रुति सिद्धात्मा कैसे सिद्धी ॥ १० ॥

अथ श्री वेदान्त डिम्डिमः स्तोत्रं ॥

ब्रह्मात्मा चिद् एक, नहीं भेद पसारा
बजता है यह ब्रह्माण्ड में, वेदों का नगारा ॥ टेक ॥
जो एक सदा से है, अलख सर्व अधारा,
कब उस के बिना, द्वैत को मिलता है सहारा ।
पहिले वही पीछे वही, बे अन्त अपारा,
उस तेज अनादी को, नमस्कार हमारा ॥ १ ॥
दो वस्तु हैं एक आत्मा, जानो मेरे प्यारे,
सब भोक्ता उसको, कहा करते हैं सदारे ।
और उससे जुदा दूसरे, सब भोग पसारे,
देहादि हैं अनात्म, यह पहिचानलो प्यारे ॥ २ ॥
दो वस्तु हैं एक ज्ञान, परम ज्योति उजाला,
बन्धन से छुड़ाता है, वह प्रकाशने वाला ।
और उससे अलग दूसरा, अज्ञान अंधाला,

बंधन में भर्म भेद के, इस जीव को डाला ॥ ३ ॥
दो वस्तु हैं इक बोध, रूप जानने वाला,
वोही है परम द्वैत का, पहिचानने वाला ।
है दूसरी जगरूप यह, अज्ञान की माला,
लख ज्ञाता सदा ब्रह्म जगत भासने वाला ॥ ४ ॥
दो वस्तु हैं आनन्द रूप, एक है उनमें,
हित जान खोज जानलो, निज सुख की लगन में ।
और दूसरी दुख रूप है, अनहित जो दुहुन में,
संसार जान छोड़ दो, सुख ब्रह्म की धुन में ॥ ५ ॥
दो वस्तु हैं एक रूप समष्टी है बखाना,
वह ईश है सब रूप उसे ऋषयों ने माना ।
और दूसरा है व्यष्टि, लखो जीव सुजाना,
इस घर में समाना, कभी उस घर में समाना ॥ ६ ॥
दो वस्तु हैं एक ज्ञान, कर्म दूसरो जानो,
तिस कर्म को भी जीव के, आधीन पहिचानो ।
त्रिपुटी है सभी भ्रान्ति, दुनिया के दीवानो,
यह मोक्ष तो है ज्ञान से, मत कर्म से मानो ॥ ७ ॥
दो वस्तु हैं इक बात है, सुनने की विचारो,
वह ब्रह्म है पहिचान के, सुख लो मेरे प्यारो ।
और दूसरी नहिं सुनने कि है द्वैत पसारो,
तुम भेद से भागो लखो निज रूप सुखारो ॥ ८ ॥

दो वस्तु हैं इक योग्य है, चिन्तन के सदा ही,
चिन्तन किये सब मुनियों ने, विश्रांति पाई ।
और दूसरे के भूलने ही में है भलाई,
चिन्तन के लिये ब्रह्म, है वेदों की बताई ॥ ९ ॥
दो वस्तु हैं इक ध्यान किये जिसके समाधी
होती भी है मिटती है, सकल द्वैत की व्याधी ।
और दूसरी प्रपञ्च, जगत खेद महाधी
कर ध्यान सदा ब्रह्म का, सब मेट उपाधी ॥ १० ॥
दुनिया में कोई भोग, कोई योग में रत हैं
हरि के न सही पुत्र व नारी के भगत हैं ।
त्यागी से लगत हैं, कोई रागी से लगत हैं
पर ज्ञान से ही मोक्ष है, हम सांची कहत हैं ॥ ११ ॥
बे अर्थ हैं सब काम, और बे अर्थ हैं बातें
बे अर्थ है बकवास, मन दुष्काम की घातें ।
सब छोड़ के इक ब्रह्म को, तू जान ले यातें
यह तुझ से कही सची है, और बातें ही बातें ॥ १२ ॥
ब्रह्मात्मा से जीव का, मिलता है ठिकाना
जीवात्मा से ब्रह्म, निज स्वरूप पहिचाना ।
बस भेद को जिस धीरने, अच्छी तरह जाना
इसमें नहीं संदेह, वह है मुक्त सुजाना ॥ १३ ॥
ब्रह्मात्मा से जीव का, भी ज्ञान है होता

जीवात्मा से ब्रह्म का, विज्ञान है होता ।
अद्वैत बोध बिना, मुक्त ही नहीं होता
दोनों का भेद जान, भरम में नहीं सोता ॥ १४ ॥
सर्वात्मा स्वरूप, परं ब्रह्म सदा है
श्रोता का आत्मा है, नहीं भेद जरा है ।
इस ज्ञान में कठिनाई का तो सामना क्या है
जिसने अभेद जाना, वही मुक्त हुवा है ॥ १५ ॥
इस लोक के परलोक के, तापों को निकालो
संचित जो कर्म हैं उन्हें तुम दूर से टालो ।
सब कर्म दग्ध करने को, ज्ञान अग्नि जलाओ
निज रूप सीताराम जान, आपको पालो ॥ १६ ॥
ब्रह्मात्मा चिद एक नहीं भेद पसारा
बजता है यह ब्रह्माण्ड में वेदों का नगारा ।

अथ श्री हरि मीड़े स्तोत्रं

नमो भक्ति से, विष्णु अनादिं, जगदादिं ।
जिसमें यह, संसार चक्र, भ्रमता एवं ॥
जिसके जाने, विनसत है यह, भ्रम चक्रं ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के, गुण गाऊँ ॥ १ ॥
एक अंश से, जिसके ऐसा, सब जग यह ।
व्यक्त भया, जिससे आच्छादित, पुनः ऐसे ॥
जिससे व्याप्त, ज्ञात जिससे है, सुख दुःखं ।

मैं उस भव तम, नाशक हरिके गुण गाऊँ ॥ २ ॥
जो सर्वज्ञ, सर्व है जिससे, जो सब है ।
जो आनन्द अनन्त गुणी, गुण वैभव है ॥
जो अव्यक्त, व्यष्टि संपूर्ण, सदसद्वं ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ३ ॥
जिससे भिन्न, नहीं है ऐसा, परमार्थ ।
भिन्न दृश्य से, विषय अगोचर वस्तुज्ञं ॥
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय से न्यारा, चित् चेतन ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ४ ॥
गुरु से ज्ञात, सूक्ष्म अति, अच्युत, जो तत्वं ।
वैराग्य और आभ्यासिक बल से, दृढ युक्तं ॥
भक्ति ज्ञान, एकाग्र परायण, ज्ञातीशं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के, गुण गाऊँ ॥ ५ ॥
प्राण खींच, ओम् कूं हिये में, चित रुद्धं ।
अन्य स्मरण छोड़ ओम् जप हरि लीनं ॥
क्षीण चित्त में, भान मात्र, चिदहं ज्ञानं ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ६ ॥
ब्रह्म नाम जो, देव अनन्यं, परिपूर्णं ।
हृदय भक्तिगं, अज अरु दुर्ग तर्कागं ॥
आत्मस्थ ज्ञान से, तज्ञ जिसे, जानत ईशं ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ७ ॥

इन्द्रियगं, स्वरूप आत्मा, निज बोधं ।
ज्ञेय अतीत, ज्ञानमय अन्तर, उपलब्धं ॥
भव ग्राह्य आनन्द अनन्यं, जो ज्ञातं ।
मैं उस भव तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ८ ॥
जो जो ज्ञात, वस्तु तत्व से, विषयाख्यं ।
सो सो ब्रह्म, जानकर ऐसे, अरु सोहं ॥
ध्यान करत, जिसको सनकादिक, मुनी अजं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के, गुण गाऊँ ॥ ९ ॥
जो जो गम्यं, सो सो मैं नहिं, कर त्यागं ॥
स्वात्म ज्योति, विज्ञान ज्ञान मय, आनन्दं ॥
वह सो मैं हूँ, आत्म विज्ञ, जनतें ज्ञातं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ १० ॥
त्याग त्याग कर दृश्य सभी, जो सविकल्पं ।
जान शेष, चिन्मात्र आप, जो नभ कल्पं ॥
त्याग देह को, भक्त मिलत अच्युत ईशं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ ११ ॥
है सर्वत्र, सर्व देही है, सर्व नहीं ॥
सबका ज्ञाता, यहां जानते, सर्व नहीं ॥
सबको अन्तर्यामी रूप से, यमन करं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के, गुण गाऊँ ॥ १२ ॥
सर्व एक, देखे सूंघे हैं, जो भोगे ।

स्पर्श श्रवण, करता जानत, जिसको कहते ॥
चित्त सात्विक, करता जनमें, जो दृष्टं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ १३ ॥
खाता सुनता, यहां जानता, रस लेता ।
सूंघत यह, शरीर धारण कर, जो जीता ॥
ऐसे आत्मा, लखता "सीताराम" हरिं ।
मैं उस भव, तम, नाशक हरि के गुण गाऊँ ॥ १४ ॥

उन्मत्त प्रलाप ।

ब्रह्मसत्तामें हम समायेंगे और कहीं दिल नहीं फंसायेंगे॥टेक
सूखी रोटी मटक के खायेंगे, जान पर अपनी खेल जायेंगे।
मैल मन पर कभी न लायेंगे, प्रेम से गाके यह सुनायेंगे॥१॥
बात कोई कड़ी सुनायेगा, उसके आगे ये शिर झुकायेगा ।
भेद दिल में कभी न लायेगा, और हँसकर ये तान गायेगा ॥२॥
कोई शत्रु है अरु न कोई मीत, हम नहीं पालते हैं ओछी प्रीत ।
है नहीं प्रेमियों की झूठी रीत, लो सुनो प्रेमरस भरे ये गीत ॥३॥
जिस जगह देखता हूँ प्यारा है, किस से कहदूँ मेरा किनारा है।
किणका २ मेरा दुलारा है, इसलिये हमने कह पुकारा है ॥४॥
कोइ आया कहांसे अरु कब है? सबसदासे है वोही अरु सब है।
पहले जो था रहेगा वह अबहै, अपना इस धुनसे तो ये मतलब है॥
दूध में जैसे जल है आंखमें तिल, जानमें जान और दिलमें दिल ।
ज्योतिमेंज्योतिमिलरहीकिलमिल, यूँ हुएमस्त पड़रहे बेदिल॥

है न कर्तव्य अरु न कोई काम, नहर पर घूमना है सुबह शाम ।
न्हाना धोना है बैठना वे काम, अरु सुना देना टेर सीताराम ॥७॥
प्यारे तुझसे हि लौ लगायेंगे, अपनी हस्ती तेरी बनायेंगे ।
वरना हम मुंह नहीं दिखायेंगे, कब तलक दृष्टियां चुरायेंगे ॥८॥

भजन ।

जगत में का सूँ करिये रार ॥ टेक ॥
आपा अपना आप कल्पना आपा ही संस्कार ।
जैसा माना वैसा जाना वैसा ही दीदार ॥ १ ॥ जग०
आप ज्ञान अज्ञान आपही आपही जानन हार ।
आप ब्रह्म अब्रह्म आपही आपही सब संसार ॥ २ ॥ ज०
आप अज्ञानी आप विज्ञानी भव दुख मेटन हार ।
अपनी रेखा अपना लेखा आप ही देखन हार ॥ ३ ॥ जग०
अपना चिन्तन अपना दर्शन अपना भाव विचार ।
अपना खोना अपना रोना अपनी हा हा कार ॥ जग०
अपना हंसना आपही फंसना आपही निकलन हार ।
आप को आप छोड़ पर देखो यही दुःख विस्तार ॥ ५ ॥
निज सुख पालो आप संभालो अपना करो विचार ।
आपा ध्यावो आप समावो आप करो उद्धार ॥ ६ ॥
आपा रोधो आपा सोधो अपना खोट निकार ।
आप सत्य अपनी ही सत्ता आपही पारावार ॥ ७ ॥
अपने में थिर आप विराजो यही ज्ञान को सार ।
भेद तजो निज खेद नहीं है सीताराम सुख सार ॥ ८ ॥

स्तुति ।

परब्रह्म निरंजन प्यारे तेरे दरशण के बलिहारे ॥ टेक ॥
जहां मन नहीं पहुंचन हारा, जहां आप ही देखनहारा
सब दरशन दृश्य बिसारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ १ ॥
वह सहज शिखर के ऊपर, अमृत आनन्द सरोवर
जहां प्रेम हिलोरे मारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ २ ॥
ऋषि मुनि बांध सिद्धासन, कर श्रवण मनन निदिध्यासन
बुद्धि से परे विचारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ३ ॥
सब सूरज चन्द्र अरु तारे, तेरी छब पर हमने वारे
है दुरलभ वेद पुकारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ४ ॥
यह स्वयं ज्योति उज्यारा, पुरुष असंग अपारा
है निर्गुण वेद उचारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ५ ॥
कर्म प्रजा अरु धन से, है दूर तेरे दरशन से
वह मिले जो सब कुछ वारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ६ ॥
तेरे परम नेह का फन्दा, फँस दूर हुआ जग धन्दा
अब फिरते हैं मतवारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ७ ॥
छुप छुप कर चुटकी मत लो, हमें अपना आप समझलो
प्यारे आंखों के तारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ८ ॥
किया अब तक बहुत किनारा, एक एक आन पर मारा
अब हम हैं शरन तुम्हारे, तेरे दरशन के बलिहारे ॥ ९ ॥
बहुत अब तक रूप छिपाया, इक इक कणिका ढुंढवाया